





पुष्प न० १६

# इक्षुकाराध्ययन

सचित्र

अनुवादक

प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि<sup>२</sup> श्री चौधमलजी  
महाराज के शिष्य साहित्य प्रेमी पण्डित  
मुनि श्री प्यारचन्दजी महाराज

प्रकाशक

श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति  
रतलाम

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथमावृत्ति  
२०००

} मूल्य चार आने

{ वीरान्द २४५३  
विक्रम १६८३

श्री जैन प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस रतलाम, सी आई

प्रकाशक-

मास्टर मिथीमल

श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति  
रतलाम



मुद्रक:-

मैनेजर लक्ष्मीचन्द्र सजीतशाला  
जैन प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस  
रतलाम ( मालवा )

# निवेदन ।



प्रिय महोदय ! आज वह विषय आपके सामने रख रहा हूँ। जिसका जैनमात्र को अध्ययन एवम् बोध करना आवश्यक है। यह विषय श्रीमदुत्तराख्ययन सूत्र का १४ वाँ अध्याय है। जिस का मूल अर्ध मागधी भाषा में श्रीभगवान महावीर स्वामीने फरमाया। उस में यह प्रकाश डाला गया है कि, इक्षुकार राजा और कमलावती रानी एवम् भृगु पुरोहित और उसकी पतिव्रता पत्नी और दोनों युग्म कुंमारों ने किम प्रकार मुक्ति प्राप्त की। उन्हीं मूल श्लोकों पर शास्त्रविशारद् श्रीब्रह्म नाचार्य पूज्यवर श्री १००८ श्री मन्नालालजी महाराज की संप्रदाय के जगत् बल्लभ प्रसिद्धवक्ता-पण्डित मुनि श्री १००८ श्रीचौथमल्लजी महाराज के शिष्य साहित्य प्रेमी पण्डित मुनि श्रीप्यारचन्दजी महाराज ने सस्कृत छाया, अन्वयार्थ और सरल भावार्थ किया है। अतः इस अध्ययन को पाठक पाठिकाओं के लाभार्थ इस सस्था की ओर से प्रकाशित कर मात्र लागत मूल्य में दिया जाता है।

इस में कही मुफ्त मशोधक की अभावधानी से अशुद्धि रह

( २ )

गई हो तो पाठक सुधार कर पढे और उस अशुद्धि से हमें परिचित करें, जिसमें द्वितीयावृत्ति में उसका विशेष ध्यान रखा जाय ।

भीजनोदय पुस्तक  
प्रकाशक समिति  
रतलाम  
ता० १-३ २७

भारतीय  
मास्टर मिश्रीमल  
रतलाम



वीतरागाय नमः ।

सक्ति विवर्ण-



स प्रसिद्ध भारतभूमि में मन् इमा के अनेक वर्ष  
पूर्व "इलुकार" नाम की एक प्रसिद्ध नगरी थी ।

उसके चारों ओर खाई युक्त कोट था । कोटकी रक्षा के लिये छोटे २ किले बने हुए थे । खाई बड़ी गहरी और चौड़ी थी जा कि स्फुट जल से सदैव पूरा भरी रहती थी । नगरी में प्रवेश करने के लिये चार दरवाजे थे उन दरवाजों पर रक्षक लोग सदैव रक्षा के लिये नियत रहते थे । नगरी के मध्य चौक में राजा के बड़े विशाल महल बने हुए थे । इन महलों से कुछ आगे आस पास घनिक लोगों के रंग रंगील सुंदर गृह और दुकानें ऐसी बद्ध बनी हुई थीं, जिनकी अद्भुत सुंदरता देख दृष्टक का मन सद्मा उनकी ओर आकर्षित हो जाता था । दुकानों के बाहर चौड़ी २ सड़के बनी हुई थीं । सड़कों के दोनों ओर हुए भरे पेड़ लगे थे जिन की मधुर छाया में मनुष्य उड़ आराम से आने जाते थे । नगर के व्यापारी लोग अनेक प्रकार की चीजें रत्न आदि देश विदेशों में मगाकर विक्रय करते थे । अनेक चीजें अपने देश के शिल्पियों से बनवा कर बाहर अन्य देशों को भेजते थे । व्यापारी लोग व्यापार में सत्यता का पालन करने के लिये उनका व्यापार बड़ा बढ़ा था । राज्यकी ओर से कोई भी पैसा कर ( महसूल ) नहीं लगा था जो प्रजाको असह्य हो । सारी प्रजा राम राज्यकी तरह सुख चैन से निवास

करती थी। राज्यकी ओर से शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिये उचित प्रयत्न किया गया था। किसी जन को किसी भी प्रकार का भय न था। कोई किसी को किसी प्रकार से प्रसित न कर सका था। अनेक धर्मस्थान बन हुए थे जिन में लोग अपनी-२ इच्छानुकूल उन धर्मस्थानों में जाजा कर नियमित समय पर धर्मानुसार आराधना करते थे। इस प्रकार तमाम मनुष्यों का समय धड़े आनन्द के साथ व्यतीत होता था।

नगर के बाहर अनेक वास भग्नाचे लगाये गये थे जिन में अनेकों प्रकार के वृक्ष अपनी-ही भरी छटा दिखा रहे थे। चारों ओर फूलों का महक वायु में संचरित हो रहा था। मध्याह्न समय नगर निवासी जन अपने काम काज से निवृत्त कर उन घाटिकाओं में आकर सारे दिन की थकावट का दूर कर अपने मस्तिष्क को विश्राम देते थे। मध्याह्न समय में जन प्रीष्म ऋतु अपना प्रचण्ड रूप धारण करती थी और सूर्य देव के द्वारा सारी भूमि अग्निही तरह तप्त हो जाती थी तब उस समय में पथिक लोग प्रीष्म के प्रचण्ड शासन से बचने के लिये उन घाटिकाओं में वृक्षों का सघन ठण्ड छाया का आश्रय लेते थे और वे वृक्षों परावर्तकी सतह की तरह स्वयं ही धूप और वर्षा सहन करते हुए आराम हुए पथिक लोगों का आश्रय देते थे। पशुनी प्रीष्म की कड़ाह से व्याकुल हो कर छाया में बैठने के लिये इधर उधर घूमकर घूमकर वृक्षों का आश्रय ले रहे थे। पत्नी गणनी उदना झाड़ू पानी से प्यासे हाथर कठिन धूपले घरड़ा कर वृक्षों की डालों में मुँह छिपाये बैठे थे।

प्रीष्म ऋतु के ऐसे ही प्रचण्ड मध्याह्न समय में उसी 'इन्द्रवार' नगरके वादर नर शूय राह में दो साधु जो कि

मुँह पर मुँहपत्ति हाथमें पात्र, कुत्ति में रजोहरण, नगे नगे पैर, नियमित श्वेत कपड़े धारण किये हुए थे जा रहे थे। रास्ते में उन साधु जनों को अत्यन्त प्यास लगी। पर उन के पास पीने को पानी नहीं था और न वे कुआँ, तालाब, नदी आदिका पानी पी सकते; इस में उनका बूँद शुष्क हाता जा रहा था, अत्रिफ प्यास क सताने ल वे बोल न सक्र थे और न चल सक्ते थे। कुछ आगे चलते चलते मूर्च्छित हो एक पेड़के नीचे गिर पड़े। कुछ समय क बीतने पर चार गोपालक ( ग्यालिये ) गौ भैसों को बराने हुए गए आ निकले। उन्होंने उन साधुओं को मूर्च्छित अवस्था में देह हुए देख कर विचार किया कि ये श्वास तो कुछ ले रहे हैं पर मृत्यु के तुल्य क्यों, यह हुए हैं? निदान इनका किसी एक दुख से पीड़ित हो मूर्च्छा आ गई है इस लिये इनको सावधान करने के लिये अपन मान में तक्र मिश्रित जल भरा हुआ है उसे इनके मुँह पर छिड़के ”। निदान उन्होंने ने ऐसा ही किया और वे दोनों साधु कुछ मावनेत हुए। तब उन्होंने ने ग्यालियों को ऐसा करने में मना किया कि, ‘एस मत करो। हमारा कटर नहीं, हमका प्यास बहुत जोर से लग रही है यदि तुम्हारे पास तक्र और कुछ हो तो हमें थोड़ा दे दो जिसे हम पी कर चित्त को शान्त्यता करें ” यह सुन कर उन ग्यालि गौने फटा कि- ‘हाँ हमारे पास तक्र मिश्रित जल भरा हुआ है आप कृपा कर ग्रहण कीजिये ’। उन चारों ही ग्यालियों ने उच्च भाव से उन्हें जल का दान दिया पर उनमें से दो ग्यालियों के दिल में फिर से कुछ कपटता आ गई जिससे उन दो ग्यालियों क छोटे घेद का वजन पड़ गया जिससे एक तो कमलावती रानी और दूसरा यथा ही हुए, पर चारों ही ने दान दते समय पड़न सत्कार



अवश्य कर लिया। तदाग्रतः उन दोनों सामुग्र्यों में उग चांगों ही गोपालकों का मय से श्रेष्ठ आदिता परमाधमः और दान क महात्म्य का दिग्दर्शन कराया।

मुनि लोग वहाँ से विहार कर आगे दूमरे नगर की गये और यों धर्मोपदेश देने हुए अपना कालाप्य करने रहे। इधर ये चारों ही गोपालक दया और दान पर विशेष लक्ष्य देने हुए समय व्ययात कर रहे थे। ये छु आँ व्यक्ति अपना २ आयुष्य पुण्यानुसार मय करते करते जो कि आग पर्वत, इन क अगम भय में एक ही स्वयं के ही "नलनी गुरुत" नाम के विमान में उड़ान ल देवता हुए। वहाँ उन छु आँ में से एक देव अपना आयुष्य पूरा कर इच्छुकार नामकी नगरी में इच्छुकार नाम का राजा हुआ। दूसरा देव वहाँ से मर कर इसी राजा के कमलायती नाम की रानी बनी। तीसरा देव इसी नगरी में भृगु नाम का राज्य पुरोहित हुआ। और चौथा देव इसी पुरोहित की पत्नी 'यशा' हुए। शेष दो देव उस स्वर्ग के विमान में सुप्त मय समय पित्त रह थे।

भृगु पुरोहित धन सम्पत्ति से परिपूर्ण और सय ही तरह के सुखों से अपना जीवन व्ययात करने थे। खी आशाकारीणी और सुन्दरता में प्रगोहारिणी थी। नौकर चाकर आदि की कार कमी न थी। सब सुखों से भरपूर होने पर भी सताते सुख का अभाव था। यम इसी दुःख की चिन्ता राक्षसी रात दिन सताये रहती थी। पुत्र कामना चित्त को व्याकुल किये डालती थी। खाने पीने, सोने जागने, उठने, बैठने यही चिन्ता चित्त पचड़ी रहती थी। इनसे अधिक दुःख भृगु पुरोहित की पत्नी का भवान न होने का था। मय है दुःख हाना ही चाहिये क्योंकि

जिस घर में सनान नहीं वह घर सूना सा दिखाई पड़ता है। गृहस्थों को चाह जितना कष्ट हो पर सनान हों तो उस कष्ट नहीं सनाना। वह दुखों को सनान के सामने तुच्छ समझना है। बेचारी भृगु पत्नी इस बात से और भी अधिक दुःखा थी कि उसे सब प्रार्थना कह कर पुकारते थे और प्रातः काल में उस का मुँह तक नहीं देखत। इसी चिन्ता में उन दोनों प्राणियों क रात दिन बीतने लगे।

इधर उन दोनों देवों का आयुष्य पूरा होने को था उन्होंने परस्पर विचार किया कि अपन लाग यहा देव हुए इस का मुख्य कारण यह है कि पिछले भद्र में मोक्ष के लिये समय धारण किया था, अत एव अपन लोगों को भद्रिय भद्र में भी समय लगा उचित है पर यह तो विचार करो कि यहा से मर कर कहा जन्म लेंगे। उन्होंने अग्रधि ज्ञान के द्वारा जाना कि इक्षुकार नाम की नगरी में भृगु नाम के राज्य पुरोहित के घर जन्म लेंगे। पुत्र की लालसा में आकर माता पिता सञ्जर्म के कट्टर विरोधी बन अपने को धर्म से विमुख करेंगे। इस से तो यह अच्छा ज्ञान कि पाहिले वहा जाकर उ हैं स्पष्ट कह दें कि तुम्हारे पुत्र तो होंगे पर वे समय लेंगे, अत उ हैं रोकना मत। ऐसा उनसे वचन ले आये। ऐसा विचार कर दोनों देव मृत्यु लोक में उतरे और साधु वेप धारण कर भृगु पुरोहित के यहा आहार पानी लेने के गहाने से आये। इन आते हुए साधुओं को देख पुरोहित मन में बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने को धर्म समझन लगा कि आज ऐसे महापुरुषों का मेरे घर पर आगमन हुआ। पुरोहित ने साधुओं के चरण स्पश किया और बोला- स्वामी पधारिये, आप ने वही कृपा करी, मेरा घर पवित्र किया, आज आप इस सेत्रक के हाथ से भोजन ग्रहण करें”। ऐसा कह कर उन दोनों साधुओं को भोजनालय में

हमारे भाग्य कहा है कि मेरे कुल में मेरे प्रभु भद्र ही ' स्वामिन् ' हम उ हों वही भी न रोकेंगे भल ही व गम में न निकलत ही साधु हो जायें यह उा की इच्छा । यह बात आप का प्रतिज्ञा व साध करने है कि हम उन्हें कदापि नहीं राखेंगे । हम तो फल प्राप्त व फलक का दूर जाना ही अपना समझते हैं । इस प्रकार कथापकथा क बाद दोनों दय जगल में आराम में जा बिगज ।

कुछ समय क पश्चात् ये दोनों ही दय अपना आयुष्य पूर्ण कर उम भृगु पुराहित का परा ' यशा ' के गम में आय । जब मासिक आयतन क समय रजोदशन न हुआ तय उम का निश्चय हो गया कि मैं गभवती हू । ऐसा निश्चय हान पर अपने आराध्य पतिदय को कहन लगी कि ' जाये साधु कह गय थे वही मुझ निश्चय हा चुका इससे आजही मे एसी पातों पर पूरा ध्यान रखना अपना धैर्य समझूगी चिनका जाना और पालन करना प्रयक खों का कतव्य है ' । पुराहित अपनी पत्नी क आशा प्रति ध्यान सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहन लगा - ' प्रिय ' प्रथम ता जैन साधु करते ही नहीं, यदि हमारे भाग्य स उहों ने कह ही दिया है ता वैसा अवश्य हा होगा ' ।

यशा का गम दिन २ बढ़ता गया और नय महीन साहू सान अहो रात्रि पण हान पर शुभ सतान का शुभ मुहूर्त में जम हुआ दो पुत्रों का जम जाना सुन कर माता पिता और कुटुम्बी जनों का हरय सहज हा में आनन्द सागर में दिलोरे मारत लगा । पिता और समस्त पारिवारिक लोगों न बड़ा उत्सव मनया । उहोंन प्रजा आर प्रम मे जैन गनाय लोगों का अनेक प्रकार के दान दिये । पुराहितता के सब मित्र सन्हा और बंधु पाचणों ने भी पुत्र जम क इस आनन्द में उाकी बधाई दा । सब न मिल

# भृगु चरित्र

। चित्र परिचय के लिये, चदनेके लिये नहीं है।



दो साधु रास्ता भूलने पर एक छोटा साधु पहाड़ी पर चढ़ कर समीप गाँव का मार्ग और गाँव दिखा रहा है।



कर आशीर्वाद दिया कि " ईश्वर कृपा से यह सतान चिरायु हो और भविष्य में ये बालक दीर्घायु हो कर खूब यश और मान प्राप्त करें "। यद्यपि यह आशीर्वाद केवल वर्तमान समय के विचारों पर दृष्टि रख कर साधारण रीति से ही दिया गया था। जैसा कि प्राय होता है, तथापि समय पाकर वह नार्थर ह्युआ। पहिल दिन " जात कम " किया, दूसरे दिन जाग्रण हुआ, तीसरे दिन बालकों को चन्द्र सूर्य के दशन कराये गये। इस प्रकार एक के बाद एक संस्कार को करते हुए दस दिन पूरे हुए। न्यारहवें दिन अशौचकर्म से निवर्तन हो बारहवें दिन सम्बन्धियों को भोजन खिला पिला कर दोनों युग्मपुत्रों के नाम देवभद्र और यशोभद्र रखे गये। अब ये दोनों पुत्र द्वितीय चन्द्रवत् अवस्था में बढ़ने लगे। यों बढ़ते २ जय पाच छ, बपक होने आय तब माता पिता को पिछली बात का खयाल आगया कि जा साधु अपने को पुत्र होने का कह गये थे वे पुत्र नो हो गये पर साथ में यह भी कह गये थे कि वे दोनों पुत्र समार परित्याग कर साधु बनेंग। अत नहीं एमा न हो कि ये पुत्र अपन को छोड साधु बन जावें। इस लिये इसका उपाय अभी से ही दृढना अनुपयुक्त न होगा। अतएव प्रथम तो यह उपाय है कि यह शहर छोड कर किसी एक घने जंगल में जाकर निवास करें क्योंकि उन जैसे साधु तो इस शहर में हर समय आत ही रहते हैं और उनकी सगति भी ऐसी है कि क्षणमात्र में ही समारी को, धैरामी घना देती है। इस लिय अपन इन पुत्रों को तेसर उम घने जंगल में चल उसे जहा कोईभी साधु ऐसा न आ सके।

। ऐसा विचार कर चारों व्यक्ति ने घने विपिन में जाकर

मीलों की भौंभड़ियों के बीच एक मकान बना लिया। वे उस जगह के मकान में निविष्टता के साथ आनन्द में पुरों के साथ जीवन व्यतीत करने लग। पुरोहितजी पुरों का शिक्षा व्यक्त देने लगे। पुरोहित के हृदय में कभी १ यह भी नरम उठती रहती थी कि कदाचित् वेन साधु भूले भटके इधर न चले आये उन साधुलोगों की मृत्यु हो कही य वालक साथ न चल जाये इस लिये उन साधुओं का भयंकर विषयान्तरण पारिषद पुरों का शिक्षा देना अनुचित न हुआ। एसा विचार कर यह पगाहत स एसा समय उन दोनों पुरों का सम्झान लगा:-  
 ' पुरों ! मरी एह बात नकर ध्यान में रखना नहीं तो कभी मार जाओगे ' पुरोंन कहा — पिताजी ! यह कौनसी एसी भयानक बात है हमें अर्थात् उस घातक पारिषद कर दोनिरे " तब पिताने कहा:- पुरों ! तुम लडकों के साथ आशा जाया देला फूदा फार हाने नहीं परन्तु उन लोगों का मग मग करना जा। इ मुँह पर एक कपड़ा गाहने हुए होत है हाथ में एक कपड़ का भोली होती है उस में पात्र रखत है पात्रों में चाकू, छुरी कतरनी नमो रखते हैं। पर ये खनते हैं ना नीची निगाह करत हुए चलत हैं। यदि काह घातक उनका (नगाहमें आता है तो पहिले व उन घरे स घडे प्यार स मधुर स्वरसे बोलत हैं। और मिष्ट पदार्थ आदि के घानका प्रलोभ भी दिखाने हैं इसने यही वधा उन के पास चला जाता है फिर व नामधारी साधु उ हें धोखे दकर जाल में ले जाने हैं और यहा उन वालक के शरीर परका पन्ना हुआ आभूषण उतार कर उन्हें मार डालत हैं। सो तुम सावधान रहना। पुरों ! हवने ना तुम्हें यता दिया ह यदि इस उपरा न भी तुम उन लोगों के पास चले ही गये तो अर्थात् ही मारे जाओगे, इत में हमारा कुछ दोष नहीं,

हम तुमको समझा चुके । " एसी बात सुनने ही डरसे दोनों पुत्र लपक कर माता पिता की छाती से विपट गये और घर घर छा पत हुए रोत रोने बोल कि हे पिता जी ! गाय बाहरनी दूर रहा पर घरसे बाहर तक भी हम नहीं निकलेंगे " पिताने सन भाया ' नहीं २ पुत्रों इनने अतीर नहीं होना चाहिये प्रथम तो एन विपिन में बैने साधु आये हो नहीं यदि आये तो ध्यान रखता उनके पास जाना मत और दौड़ कर अपने घरक भीतर चले आना । और इन बातका पूरा ध्यान रखता । पिताकी इन शिक्षा को मानकर दोनों बालक घर के आन पास ही खतन थे और दूर न जाने थे ।

कुछ दिना धीनने पर उनी जगम भे हाकर दो साधु किसी नगर को जा रह थे परन्तु वे जहा रास्ता भूव कर जगम में इधर उधर भटकने लगे । शिष्य ने रुदा- गुरुजी ! मध्याह्न का समय आ रहा है प्यास बहुत जोर से सागरही है अतः ऐसा कोई उपाय करे जिन से गाय पाम अने परतक आदकी याचना कर अचतको शान्तरना दें " गुरुत रुदा- " क्या करे, आपन रास्ता भूलगये अब ऐसा करो कि उल टकरा पर चढ कर आन पास देखो काई गाय निगाह पड तो बहा नै " ऐसाही किया कुछ दूरी पर एक छोटामा गाय दिस पडा । उनी गाय में भगु पुराहितमी रहता था । ये दोनों साधु गंगामे चल कर उनी गाय में आये और उत्तम परकी शोष करत २ पुरोत न के घर के पास ही आ आनकल । उन आये हुए साधुओं को देखत ही पुराहितकी आँखें चढ गई और मनसा मन कठने लगा- " हे इस छोटने गाय में भी यह लोग भगने ! इसका भी मैं नहीं छाड़ा इनक दुःख से तो शहर बुद्धर बहा आये । पर भी ये यम आ पड़े हुए । और कानये तो इनक पक



द्वार पाणीमें यहाँ भरदो ताकि पर्याप्त आहार पाने से और घरों में नहीं भटकेंग नहीं ना आहार पानी के लिये इधर उधर भ्रम्य करेंगे भटकते हुए वहाँ पुत्र न मिल जाय । वन इसी अभिप्राय से पुरोहित बोला- ' महाराज ! यहा पारो यह ब्राह्मण का घर है " । तब ये दोनों साधु चला गये । दही दूध, रोटा और घोजन पर्याप्त उठे बहारा कर पुरोहित बोला- महाराज ! अब आर घरों में मन भगिये यदि कुछ कमी हो तो यहा से और ले लीजिये, क्योंकि मेरे दो पुत्र यहे कुपात्र और क्राधी हैं, साधु सत्तों का देग्र कर उनके कपड़ फाड डालते हैं । उन पर पत्थर फेंकते हैं । यदि उनका पास लकड़ी हो तो उसका माग्ने हैं । गालिया देते हैं । ऐसे अनक तरह से फए पहुचाने हैं अत आम रास्ता छोड़ कर किसी एक गली के रास्ते से निकल आव जगल में जाकर वहा भोजन करना । गाव में वहाँ न ठहरना ।

पुरोहित के कहने से ये दोनों साधु गला के रास्ते से जगल की ओर प्रस्थान कर रहे थे ता जिस गली से जा रहे थे उसी में आगे दानों वाला क खेल रहे थे । यथायक उन साधुओं पर दालकों की दृष्टि पड़ी तो चमक कर एक ने कहा- अरे भ्राता ! यशामद्र ! लौहो २ भागो भागो । आज मौत की निशानी आ गई है । विना न जो ! व द वनाये थे वहाँ चिहों से सिद्धन दाल घातक आ रह है । दोनों लडकों रास्ता दूमरा न दाने से अपनी जान ल जगल की ओर भागे जा रहे थे । साधु स्यामात्रिक ही उनके पीछे पीछे जा रह थे । लडकों ने भागते हुए पीछे की ओर देखा तो जान पडा कि ये साधु उहाँ की ओर जर्ग २ आ रहे हैं । इस से लडकों ने सचमुच ही जान लिया कि ये साधु अपना तरफ ही अपन को पकडन के लिय आ रहे हे । ज्यों ज्यों उ हे पास आने देखत त्यों २ वर्यों का जान अधिक हैरात दाने लगती थी ।

उधर दौड़ते ? थक गये तब एक बट के भाँट पर जो समीप ही था उस पर जल्दी से चढ़ गये और पत्तों की आड़ में अपने को छिपा कर घँट गये और एक दूसरे से कहने लगे " भाई ! खासना मत खुपचाप यहा टिप रहो जय ये रात घातक यहा से आगे चल जावेंगे तब अपन यहा से नीचे उतर कर अले चलेंगे । उधर दोनों नायु नीची दृष्टि से देखत हुए उसी बट बृत्त के नीचे आकर आपस में कहने लग कि यह जगह ठीक है, अत आहार पानी यहीं खा, पी लो । उन लडकों ने यह सुना कि इन को यहीं मार कर आगे चलो । इस फिर क्या था य बच्चे आर भी अधिक थर २ कापने लगे । उन साधुओं ने पात्र खालने की चेष्टा की तो लडकों ने जाना कि इन्होंने अपन को देख लिया है जिस से ये पात्रों में न मारने के लिये चाकू लुगी आदि निकाल रहे हैं । आग पात्र खोलने पर दूध दही रोटी आदि नजर आई तब बच्चों ने विचार किया कि पात्रों में से चाकू लुगी तो निकली नहीं इनके यजाय दूध दही, रोटी निकली जा कि ऐसी अपन घर खा कर आये हैं हो न हा ये चीजें सब अपन घर की ही मालूम होती है ।

इतने ही में गुरु ने शिष्य से कहा " बेटा, ध्यान रखना यहा कीडिग बगुन है " । कुञ्ज ही देर पीछे बाले- दस २ यह कीडी पाव नीचे न आ जाये इमे बहुत आसानी से पूजनी से दूर करो " । इस प्रकार का दृश्य उन दोनों लडकों ने ऊपर से देख कर हृदय पर हाथ पर विचार किया कि ये साधु कीडी तक को तो मारते ही नहीं तो फिर य बालद्वया कैसे करेंगे । इस से स्पष्ट मालूम होता है कि जो पिता ने हम को कहा था वह असमय से प्रतीत होता है । एसा विचाराश करते ही उन लडकों को जाति स्मरण ज्ञान का आया । उस समय ज्ञान के द्वारा अपन-पिता ही



कायों को देखा है वे ना प्राप्त भोग दाता ह। पिताजी यह  
 ससार तो स्वार्थी है। अब हम इन ससार के स्वार्थी जनों में  
 रहना नहीं चाहते। अब आप हमें तो साधु बनन की आज्ञा प्र-  
 दान करिये। " पुरोहित बोला - ' पुत्रों ! कुछ मोचो, विचारो।  
 पालन में इतनी जटिल मत करो। तुम प्रभा अयात्र बालक हो,  
 कामल अवस्था है बुद्धि पाण्डित्य नहीं बनार सुख देना नहीं,  
 अभी तुम गृहस्थाश्रम में प्रवेश हुए नहीं ससार के सुखों का  
 अनुभव किया नहीं। तुम्हारी अवस्था अभी प्रिया प्राप्त करने की  
 है इस के पीछे तुमारासा हो जाने पर गृहस्त्री बनकर विषय  
 सुखको भोगा। फल मन्तानादि हो जाने पर यदि साधु बनना  
 चाहा तो साधु बन जाना। " लडकों ने कहा - ' पिताजी !  
 पौद्गलिक सुख तो क्षणमात्र के हैं इस के बाद उही व्यवस्था है।  
 जैसे। कमी तलवार की धारा पर शहर बिन्दु चाटन का कुछ  
 थोड़ासा सुख है पर। फल अन्त में जीव कट जाने का महा भय  
 फल दुख हाता है। इस लिए ऐसे सुखों पर हमारी इच्छा कदापि  
 नहीं हम तो उनी सुखकी चाहना कर रहे हैं जिन में लज्जेश  
 मात्र भी दुखकी समाप्ति न हा। " निदान भृगु पुरोहित ने  
 अपने पुत्रों का भोगोपभोगों के नाना प्रकारके सुख और नयम  
 की कठिनाता दिखाई पर पुत्रों ने एक न मानी और साधु बन  
 ने को दृढ़ प्रतिज्ञा करली।

भृगु पुरोहितने अपने पुत्रों की दृढ़ प्रतिज्ञा साधु बन ने  
 की क्षणी तो उले मोड़ के कारण सारा ससार अधकार मय  
 दिखाई पड़ने लगा और सोचने लगा कि इतनी भारी धन  
 सम्पत्ति होने परभी बनान सुख प्राप्त नहीं होगा तो यह धन  
 किस काम का हाता और हृदय दुःख में जतरा रहेगा। इन  
 पुत्रों को सब तरह से समझाया पर ये साधु हुये बिना न

रहेंगे। जब येही घर में न रहेंगे तब ससार में गृहस्थाश्रम में रहने से लाभ ही क्या ? इस से तो इनके साथही मुनि वृत्ति ग्रहण करना उत्तम होगा। अतएव उसन भी मुनिवृत्ति ग्रहण करने की टान ली।

शृगु पुरोहित अपनी पतिभद्रा पत्नी के पास जाकर इस प्रकार कहने लगा - प्राणप्रिये ! दोनों पुत्रों के भविष्य में जो साधुओं ने कहाथा और हमें जिस बातका भयथा विम भय न हम नगरी छोड़कर इस वन में रहे थे वही बात आज साधुओं के आज्ञान से हो गई। ये अपने दोनों पुत्र साधु बनन का जा रहे हैं क्या तुम्हारी क्या इच्छा है ? " पुरोहितानी कुछ देरतो च कितसी रह गई पर यह सान कर कि भविष्य में उन पुत्रोंका ऐसा ही होनाथा। धीरेन घर कर स्वामी से बोली - ' स्वामी ! पुत्र ससार परित्याग करें तो उन्हें कर्म दो। यह अपार सम्पत्ति जिस के लिय मनुष्य गत दिन परिश्रम करने हैं और अनेक छल कपट से धन इकट्ठा करते हैं उस अतुल धन राशिको क्यों क्यों आओ पुत्रों का साथ छोड़ अपन दोनों ही ससार के सुख और ऐश्वर्यका भोग भोगें। " पुरोहित बोला - प्रिये ! नहीं नहीं ! सुख भोगने ७ अन्तिम अश्रमथा आगइ है फिर भी भोगने की उत्कृष्ट इच्छा तुम्हें ही रही है। देखो तो सही जो अभुक्त भागी हैं वे तो समय ल रहे हैं और हम भुक्तभोगी आर भी सासारिक सुखों के भोगने के लिये ससार मे बैठ रहे। क्या हमारी बुद्धि इन बालकों से भी हीन है ? कभी नहीं एसा न होगा। मैं भी इन बालकों के साथ ससार परित्याग कर मुनिमत लूंगा। यदि तेरी इच्छा हो ता तू भी ससार परित्याग कर। " जब ' यश' ने दखा कि स्वामी रहने के नहीं, पुत्र रहने के नहीं जिन स सारे ससारता सुख था तत्र में ही शकली स-

सारमें क्या रहेंगी ? इनकी तरह स मे भी अपनी आत्मा का क्यागु क्यों न करू।" ऐसा पक्का विचार कर चारों ही व्यक्ति नगरी में आकर अपनी अतुल धन राशि को छोड़ साधु धन ने को घर से चल निकल ।

यह समाचार सारी नगरी में विजली की भँति फैल कर राजा तक पहुँचा । राजा ने उस समय के नियमानुसार ' जिस धन का कोई स्वामी न रह जाय वह कोष में मगा लिया जाय, पुरोहित के सारधन सम्पत्तिको राज-कोष में डालने के लिय अनुचरों का आज्ञा देदी । वे लोग पुरोहित की सारी धन सम्पत्ति को ला लाकर राज्य कोष में डालने लगे । यह समाचार सानी कमलावती का मालूम हुआ तो उस ने राजा से निवृत्त किया - प्राणनाथ ! दान में जो द्रव्य आप दे चुके हो उसे पीछे लौटाया बुद्धमानों का काम नहीं है दिये दान का तो छूनेका भी विचार न करना चाहिये । राजा बोला - ' सानी ! नभलकर वाला राज्य मडार में तो ऐसा ही धन आता जाता है यदि तुम्हारे को पसन्द नहा तो समार में क्यों बैठा हुई इसी जन मे माज उडा रही हो ? " सानी बोली- ' प्राणनाथ ! मैं इस मौत को माज नहीं समझती वरन् प्रधन समझती हू । जैसे सोन के पिंनरे में तोता भी प्रधन रूप दुप अनुभव करता है । इसी प्रकार हे राजन् मैं भी इन पौडलिक सुखों के प्रधन में दुप समझती हूँ । मेरा मन इन सुखों से उपरति हो रहा है । आप आज्ञा प्रदान करे तो मे भी साधी बनूगी और इसकी मुक्त उत्कट इच्छा टा रही है सो हे स्वामी, इस प्रनय को स्वीकार कीजिये और श्रीमदा राज आपसे भी प्रनय करती हू कि आपकी सौचिये क्या

आप अमर होकर आये हूँ ? आप जैसे अनक राना इस भू-मण्डल पर चक्रवर्ती होकर अत इन नगर शरीर को छोड़ कर चले गये ! यह पृथ्वी यह वैभव, यह हकूमत, यह राज-भगडार यह हाथी-घाड़ आदि सब वैभव यद्वा का यहीं रह गया कोई भी प्यारा बंधन, स्नेही, मित्र, सेना शत्रु साथ में न चला ! यदि आपने इन सब ठाट पाट, सुख-चैन, वैभव को न छोड़ा तो एक दिन ऐसा आवेगा कि जब ये सब स्वय ही आप को छोड़ देंगे । तब आप स्वय ही राज्य सुखों को छोड़ मात्र जानका प्रयत्न क्यों न करें । ' इतना सुनते ही राजाको भी वैराग्य हा आया और वैराग्य अवस्था में आकर अपने पुत्र को राज्य भार सौंप दिया और आप स्वय राणीका वैराग्य की आज्ञा दे कर सयमी बनाई । तदनु गना और रानी पुरोहित और पुरोहितानी दोनों वालन ये छुओं ही व्यक्ति सयम धारण कर अनेक ज म ज मानर के किये हुए पापों को तपमत स भस्म कर मोक्ष चले गये । इति शम्



ॐ

असिञ्चाउसाय नमः

मङ्गलाचरणम्

मङ्गल भगवान् वीरो, मङ्गल गौतमः प्रभुः ।

मङ्गल स्थूल भद्राद्यो, जैन धर्मोस्तुमङ्गलम् ॥ १ ॥



मूल-देवा भविताण पूरे भवम्मि,

केई चुया ण्णविमाणवासी ।

पुरे पुराणे उस्तुयारनामे,

ग्वाण समिद्वे सुरलोगरम्मे ॥ १ ॥

सरुम्मसेमेण पुराक्कण्ण,

कुलेसु दग्गेसु य ते पत्तया ।

निन्विणससारभया जहाय,

जिणिन्दमग्गसरणपवन्ना ॥ २ ॥

द्याया-देवा भूत्या पूर्वस्मिन् भवे, केचिच्च्युता एकविमानवासिनः।

पुरे पुराण इच्छुकारनाम्नि, ख्याते समृद्धे सुरलोकरम्ये ॥ १ ॥

सरुर्मशेषण पुग कृतेन, कुलेषूदग्रेषु ते प्रमृताः ।

निर्विण्णा' ससारभयाद्वित्ता, जिनेन्द्रमार्गं शरणं प्रपन्नाः ॥ २ ॥



अत्रयार्थ—(केचित्) कई एक (पूर्वस्मिन्) पहिले (भवे) जन्म में (एकविमानवामिनः) एक विमान में रहने वाले (देवा) देव (भूत्वा) हो कर 'तदनु बहामे' (च्युता) पतन को प्राप्त हो (पुरा) पूर्व जन्म में (कृतेन) किये हुए (स्वकर्म-शेषेण) अपने कर्म के अवशिष्ट अंश से (रयाते) सुप्रसिद्ध (समृद्धे) समृद्धिशाली (सुरलोकरम्ये) स्वर्ग के समान रमणीय (इक्षुकारनाम्नि) इक्षुकार नामक (पुराणे) प्राचीन (पुरे) नगर में (ते) वे (उदग्रेषु) उचे (कुलेषु) कुलों में (प्रसूता) उत्पन्न हुए (ससारभयात्) ससार के भय से (निर्विण्णा) उद्वेग पा कर (हित्वा) 'ससार जा' परित्याग कर (जिनेन्द्रमार्गं) जिनन्द्र क मार्ग की (शरण) शरण (प्रपन्ना) प्राप्त हुए ॥ १ ॥ २ ॥

भावार्थ—कई एक जीव पहिले जन्म में एक ही पद्मगुप्त नाम के विमान में अपना आयु पूरा कर पूरा भय से अचिन्त शुभ कर्म के रह हुए शेष भाग से सुरलोक के सदृश मनाहर प्रसिद्ध धन वाय आदि आदि युक्त इक्षुकार नामक नगर में प्रधान कुल में उत्पन्न हुए। तदनु कुछ समय के बाद महद के सङ्घोष द्वारा ससार के जन्म मरण आदि दुर्गों से भयभीत हो कर जिनन्द्र भगवान के प्रकाशन मार्ग के शरण को प्राप्त हुए ॥ १ ॥ २ ॥

मूल-पुमत्तमागम्य कुमार ढोऽवि,  
पुगेहियो तस्त जसा य पत्ती ।

विशालकिर्त्ती य तद्दे सुयारो,  
रायऽत्थ देवी कमलावई य ॥ ३ ॥

छाया-पुस्त्यमागम्य कुमारौ द्वापि, पुरोहितस्तस्य यशाश्च पत्नी ।  
विशालकीर्त्तिश्च तथेक्षुकारा-राजाऽत्र देवी कमलावती च ॥३॥

अन्वयार्थ-(अत्र) यहा पर ( पुस्त्यम् ) पौरुष्य पने (आग  
म्य) प्राप्त हुए (द्वौ) दोनों (अपि) प्रधानता सूचक (कुमारौ)  
कुमार (पुरोहितः) ' तीसरा ' पुरोहित (च) और ' चौथा ' (तस्य)उसकी (पत्नी) औरत (यशाः) यशा नाम वाली (तथा)  
तैमे ही ' पाचवा ' (विशालकीर्त्तिः) विस्तीर्णकीर्त्ति वाला  
(इक्षुकारः) इक्षुकार नामक (राजा) नरश (च) और ' छट्ठा '  
(देवी) राणी (कमलावती) कमलावती नाम की हुई ॥ ३ ॥

भावार्थ-छ पुरुष यथा शक्ति धर्म त्रिया कर एक ही स्वर्ग के  
एक ही विमान में छ ही देवता हुए थे । यहा वे अपना २ आयु  
पूर्ण कर उन छठों में से एक देव यहा इक्षुकार नाम के नगर में  
इक्षुकार नामक नरेश हुआ । और दूसरा एक देव इसी राजा के  
कमलावती राणी हुए । तीसरा एक देव इसी नगर में भृगु नामक  
राज्य पुरोहित हुआ । और चौथा एक देव इसी पुरोहित के यशा  
नाम वाली औरत हुई । और दो देव राज्य पुरोहित के पुत्र पने  
आकर हुए ॥ ३ ॥

मूल-जाईजरामच्छुभयाभिभूया,  
यर्हिंविहारामिनिविद्वचित्ता ।

ससारचक्रस्य विमोक्षणद्वारा,  
दृष्ट्वा ते कामगुणे विरक्ता ॥ ४ ॥

छाया-जातिजरामृत्युभयाभिभूतौ, वहिर्विहाराभिनिविष्टचित्तौ ।  
ससारचक्रस्य विमोक्षणार्थं, दृष्ट्वा तौ कामगुणेषु विरक्तौ ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ-(जातिजरामृत्युभयाभिभूतौ) जन्म, वृद्धा-  
वस्था, मृत्यु भय से भयभीत होने वाले (वहिविहाराभिनि-  
विष्टचित्तौ) ससार से बहारका स्थान में आशक्त चित्तवाले  
( तौ ) वे दोनों कुमार ( दृष्ट्वा ) ' उन साधुओं ' देख कर  
( ससारचक्रस्य ) ससारचक्र को ( विमोक्षणार्थं ) दूर करने  
के लिये ( कामगुणेषु ) विषय वासना से ( विरक्तौ ) विरक्त  
हुने ॥ ४ ॥

भावार्थ-ससार में जन्म जरा मृत्यु आदि भयों से भयभीत  
होने वाले और ससार से बहार का जा स्थान ( मोक्ष ) उस  
स्थान को प्राप्त करने के लिये आशक्त चित्त वाले वे दोनों राज्य  
पुरोहितके पुत्र सहस्र को देख कर ससार के सपूर्ण विषय  
वासनाओं में विरक्त हुए ॥ ४ ॥

मूल-पियपुत्तगा दोन्निवि मन्हाणस्स,  
सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स ।  
सरित्तु पीराणिय तत्थ जाइँ,  
तहा सुचिण्ण तव सजम च ॥ ५ ॥

१-पंचमी । यमकि के स्थान में सप्तमी हुई ।

छाया- प्रियपुत्रकौ द्वावपि ब्राह्मणस्य,  
 स्वकर्मशीलस्य पुरोहितस्य ।  
 स्मृत्वा पौराणिकीन्तत्र जातिं,  
 तथा सुचीर्णं तपः सयम च ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ ( स्वकर्मशीलस्य ) अपने कर्म कारणों में नि  
 पुण ( ब्राह्मणस्य ) ब्राह्मण ( पुरोहितस्य ) पुरोहित के  
 ( द्वावपि ) दोनों ही ( प्रियपुत्रकौ ) प्रिय पुत्र ( तत्र ) वहाँ,  
 ( पौराणिकीं ) पूर्व ( जातिं ) जन्मको ( तथा ) तथा प्रकार का  
 ( सुचीर्णं ) अङ्गीकार किया हुआ ( तपः ) तपत्रत ( च ) और  
 ( सयम ) समयको ( स्मृत्वा ) स्मरण कर ॥ ५ ॥

भावार्थ-अपने किया कारण में निपुण ऐसा जा वह पुरो-  
 हित ब्राह्मण उसक उन दोनों प्रिय पुत्रों न जाति स्मरण ज्ञान  
 द्वारा विचार किया कि अपन ने अगले जन्म में किस प्रकार  
 का तपत्रत और सयम अङ्गीकार किया था वह सब  
 उनका भाषित होने पर फिरसे धन्या ही करने के लिये  
 उत्तेजित हुए ॥ ५ ॥

मूल-ते कामभोगेषु अमज्जमाणा,  
 भाणुस्सण्णसु जे यावि दिव्वा ।  
 मोक्खाभिकग्गी अभिजायसद्धा  
 नाय उवागम्म इम उवाहु ॥ ६ ॥

छाया-तौ कामभोगेषु मसजतां, माणुष्यकेषु ये चापि दिव्याः ।  
 योक्षाभिकाक्षिणावभिजातश्रद्धौ तात्तमुपागम्येदमुदाहरताम् ॥ ६ ॥

अन्यार्थ (मानुष्यकेषु) मनुष्य सम्बन्धी (ये चापि) जो और भी (द्विज्या) देवता सम्बन्धी (काम भोगेषु) काम भोगोंमें (अससजतौ) मसर्ग नहीं करते हुए (अभिजात-श्रद्धौ) उत्पन्न हुई है तब रुची ऐस (मौक्षाभिकाक्षिणौ) मोक्षार्थी इच्छा करने वाले (तौ) य दानों पुत्र (तातमुपागम्य) पिता के पास आकर (इद) इस प्रकार (उदाहरताम) कहते हुए ॥ ६ ॥

भाषा-उत्पन्न हुई है तब रुची जितना ऐसे वैदोंके पुत्र मोक्षाभिलाषा मनुष्य सम्बन्धी और देवता सम्बन्धी काम भोगों का मसर्ग नहीं करते हुये अपन पिता के पास आकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥

मूल-अशाश्वत दृष्ट्वा इम विहार,  
बहुन्तराय न च दीर्घमायु ।  
तस्माद्गृहे न रतिं लभामहे,  
आमत्रयावह चरिष्यामो मां ॥ ७ ॥

छाया-अशाश्वत दृष्ट्वा इम विहार, बहुन्तराय न च दीर्घमायु ।  
तस्माद्गृहे न रतिं लभामहे, आमत्रयावह चरिष्यामो मां ॥ ७ ॥

अर्थ- (इम) यह (विहार) मनुष्य भव अशाश्वत) हमेशा का नही है 'तदपि (बहुन्तराय) बहुत अतराय है, (च) और (आयु) उच्च (दीर्घम्) लम्बी (न) नहीं है 'एमा' (दृष्ट्वा) देख कर (तस्मात्) इस कारण से (गृहे) घर में (रतिं)

# भृगु चरित्र

। चित्र परिचय के लिये, चन्दनेके लिये नहीं है।



दोनों साधु गाव में प्रवेश हो रहे हैं आगे उ हे  
भृगु परोहित और उसकी स्त्री दोनों भाहार बहरा रहे हैं  
दो बालक गेद खेल रहे हैं ।

अन्वयार्थ (मानुष्यकेषु) मनुष्य सम्बन्धी (ये चापि) जो और भी (दिव्या) देवता सम्बन्धी (कामभोगेषु) काम भोगोंमें (अससजतौ) ससर्ग नहीं करते हुए (अभिजात-श्रद्धौ) उत्पन्न हुई है तत्र रुची ऐसे (मौत्साभिकाक्षिणौ) मोक्षकी इच्छा करने वाले (तौ) न दानों पुत्र (तातमुपागम्य) पिता के पास आकर (इदं) इस प्रकार (उदाहरताम) कहत हुए ॥ ६ ॥

भाषार्थ-उत्पन्न हुई है तत्र रुची जिनको ऐसे घेंदोनों पुत्र मोक्षभिलाषा मनुष्य सम्बन्धी और देवता सम्बन्धी काम भोगों का ससर्ग नहीं करते हुए अपने पिता के पास आकर इस प्रकार कहने लग ॥ ६ ॥

मूल-अस्मास्य षड् षम विहार,

बहुन्तराय न च दीर्घमाउ ।

तस्मा गिरसि न रइ लभामो,

आमतयामो चरिस्सामु मोण ॥ ७ ॥

छाया-अशाश्वत षष्टेऽप विहार, बहुन्तराय न च दीर्घमायु ।

तस्माद्गृहे न रतिं लभावहे, आमत्रयानह चरिष्यामो मैन ॥७॥

अन्वयार्थ-(इम) यह (विहार) मनुष्य भव अशाश्वत) हमशा का नहीं है 'तदापि (बहुन्तराय) बहुत अंतराए है, (च) और (आयु) उम्र (दीर्घम्) लम्बी (न) नहीं है 'येमां' (षष्ठा) दर कर (तस्मात्) इस कारण स (गृहे) घर में (रति)

# भृगु चरित्र

। चित्र परिचय के लिये, बन्दनेके लिये नहीं है।



दोनों साधु गाव में प्रवेश हो रहे हैं आगे उ हे  
भृगु परोहित और उसकी स्त्रा दोनों आहार बहरा रहे हैं  
दो बालक गेंद खल रहे हैं ।





आनन्द को (न) नहीं (लभावते) प्राप्त कर सके (आमन्त्रया वहे) हम पृथक्ते हैं आपको (मौनं) दीक्षा (चरिष्यामः) अङ्गीकार करेंगे ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे पिता श्री ! यह मनुष्य भय अल्प आयु वाला सदैव रहने का नहीं है नश्वर है । और इस स्वल्प आयु में भी भागोपभाग भोगने के लिये यामी धामी युष्कार निद्रा शोक आदि अनेक प्रकार की राधाएँ आ खड़ी होती हैं । एनी अनित्य अत्रस्था में उस परम शाश्वत सुखों का छाह कर गृहस्थाधन के पौद्गलिक क्षणिक सुखों में हमें आनन्द नहीं प्राप्त होता है । अतएव हम मुनिवृत्ति ग्रहण करेंगे । आप हमें आशा प्रदान करें ॥ ७ ॥

मूल—अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं,

तवस्स वाघायकर वयासी ।

इम वय वेयविग्रो वयन्ति,

जहा न होई असुयाण लोगो ॥ ८ ॥

आया—अथ तातकस्तत्र मुन्योस्तयोस्तपसोव्याप्रातकरमवादीत् ।  
इमा वाच वेदविदो वदन्ति, यथा न भवत्यसुतान लोकः ॥ ८ ॥

अन्यार्थ—(अथ) इम केवाद (नातकः) पिता ( तत्रः )  
तहाँ ( मुन्योः ) ' भाव ' ' मुनि ( तयोः ) उन्ह के ( तपसः )  
तपमा को ( व्याप्रातकर ) राधा पहुचाने को ( अवादीत् )  
कहने लगा ( वेदविद ) वेद के जानने वाले ( इमा ) यह  
( वाच ) वचन ( वदन्ति ) कहते ( यथा ) जैसे ( असुतान ) विना  
पुत्र ( लोकः ) परलोक ( न ) नहीं ( भवति ) होता है ॥ ८ ॥

भार्यार्थ-इस प्रकार दोनों पुत्रों के दीक्षा की आशा याचने के बाद इ हों के पिता सगु-पुराहित उद्ददानों भाव मुनियों के तप, मयम का व्याघात पहुचान क लिय इस प्रकार कहन लगा कि हे पुत्रों! इस सत्सर में चक्क जानन वाले तथ्यय यह कहत हैं कि बिना स तान हुए उसकी सद्गति नहीं होत। ॥ ८ ॥

मूल-यद्विज्व वेण परिविस्स विप्पे,  
पुत्ते परिट्ठप्प गिहसि जाया ।  
भोच्चाण भोग सह इत्थियाहि,  
आरणणा होह मुणी पसत्ता ॥ ९ ॥

व्याख्या-अधीत्य वेदान्परिरेष्य विप्रान्पुत्रान् परिष्टाप्य गृहे जातौ ।  
भुक्त्वा भोगान् महस्त्रीभिरारणयन् भवत मुनी प्रशस्तौ ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ-(जातौ) हे पुत्रों (वेदान्) वेदों को (अधीत्य) पढ़ कर (विप्रान्) ब्राह्मणों को (परिरेष्य) भोजन करा कर (स्त्रीभिः) स्त्रियों के (सह) साथ (भोगान्) भोगों का (भुक्त्वा) भोग कर (गृहे) घर में (पुत्रान्) पुत्रों का (परिष्टाप्य) स्थापन कर (आरणयन्) वान प्रस्थ (मुनी) साधु (भवतम्) होना (प्रशस्तौ) प्रशशनीय है ॥ ९ ॥

भार्यार्थ-हे पुत्रों? हमारा तुम से यह कहना है कि पहले वेद शास्त्र पढ़ो ब्राह्मणों को सगु स्त्रियाँ पिलाओ स्त्रियों का साथ भोग भोगा, दो चार पुत्र होने क बाद उन पुत्रों का होशियार कर गृहस्थाश्रम में प्रवत कर दे फिर तुम को मुनिवृत्ति प्रदण करना प्रशशनीय है ॥ ९ ॥

मूल-सोयग्निणा आयगुणिधणेण,  
 मोहाणिला पज्जलणादिण्ण ।  
 सतत्तभाव परितप्पमाण,  
 लालप्पमाणं बहुधा बहु च ॥ १० ॥

पुरोहित्त त कमसोऽणुणत्त,  
 निमतयत्त च सुण धणेण ।  
 जत्तकम्म कामगुणेहि चेष,  
 कुमारगा ते पसमिअग्ग वड्ढं ॥ ११ ॥

छाया-शोकाग्निनात्मगुणेन्धनेन, मोहानिलादधिकप्रज्वलेन ।  
 सतप्तभाव परितप्यमान, लालप्यमान बहुधा बहु च ॥ १० ॥  
 पुरोहित त क्रमशोऽनुनयन्त, निमत्रयन्त च सुतौ धनेन ।  
 यथाक्रम कामगुणैश्चैव, कुमारकौ तौ प्रसमीक्ष्य वास्य (ऊचतुः) १ १

अन्वयार्थ—(आत्मगुणेन्धनेन) आत्मा के गुण रूप इन्द्रज  
 (मोहानिलात्) मोह रूप इवा (अधिकप्रज्वले) 'द्वारा'  
 प्रज्वलित (शोकाग्निना) शोक रूप अग्नि से (सतप्तभाव)  
 मन्ताप्तभाव हुए हैं ऐसा (परितप्यमान) परित्रास पाता  
 हुआ (बहुधा) बहुत प्रकार क (बहु) बहुत मे (लालप्यमान)  
 लालच (क्रमशः) क्रम से (सुतौ) पुत्रों को (अनुनयन्त)  
 जिताता हुआ (यथाक्रम) यथाक्रम (धनेन) धन कर के (च)  
 और (कामगुणै) स्त्रीभाग कर के (एव) निश्चयार्थ (निमन्त्र-

यन्त ) निमग्न करते हुए ( त ) उस ( पुरोहित ) पुरोहित  
को ( प्रसमीक्ष्य ) देखकर ( तौ ) वे दोनों ( कुमारौ ) कुमार  
( चाण्य ) ' उच्यते ' कहते हुए ॥ १० ॥ ११ ॥

मायाय-दोनों पुत्रों को पितान बहुत समझाया पर वे दोनों  
पुत्र अपने प्रणु से एक परभी पीछे न हट तब शोक रूप  
अग्नि आत्मा के गण रूप ई उन, मोह रूप हवा से प्रज्व-  
लित हुआ हृदय जिसका एसा यह पुरोहित सताप और  
परिचाप पाता हुआ औरभी अपने पुत्रों क वैराग्य पथ से  
पृथक् करन क लिये नाना प्रकार के बहुत से धन धा य  
स्त्रीभोग आदि क्रमवार भागोपभागों का विनम्र भावोंके साथ  
निमग्न करता हुआ । पितान् अज्ञान से आढादित देखकर वे  
दोनों कुमार यो बोले ॥ १० ॥ ११ ॥

मूल-येया अर्हीया न भवन्ति ताण,  
मुत्ता दिया निति तम तमेण ।  
जायाय पुत्ता न ह्यन्ति ताण,  
को णाम ते अणुमग्नेज्जण्य ॥ १२ ॥

ध्याया यदा अधीता न भवन्ति त्राण,  
मुक्ता द्विजा नयति तमस्तममा ।  
जाताश्च पुत्रा न भवन्ति त्राण,  
को नाम वेज्जुम न्येततत् ॥ १२ ॥

अन्वयाय-( येदा ) वेदों को ( अधीता ) पढने से ही वेद  
( त्राण ) शरणभूत ( न ) नहीं ( भवन्ति ) होते है द्विजाः ) 'पथ

च्युत' ब्राह्मणों को (भुक्ता) जिमाने से (तमसा) अज्ञान कर  
 के (तमः) अधोगति को (नयति) प्राप्त होत हैं (घ) और  
 (पुत्राः) पुत्र (जाताः) होने से (त्राणं) शरण (न) नहीं  
 (भवन्ति) होते हैं तब (कः) कौन (नाम) ऐसा (ते) तुम्हार  
 (एतत्) ये 'वाक्य' (अनुमन्येत्) मान सकता है ॥ १२ ॥

मावाय हे पिता श्री ! केवल वेद शास्त्रों ( ज्ञानशा  
 स्त्रों ) को पढ़ने से बड़ शरण भूत नहीं होते हैं । क्योंकि  
 केवल पढ़ने मात्र ही से नशा ! वेद पढ़ने के बाद सत्य  
 कर्मों में प्रवर्ती करें । उसी के वेद पढ़ना इम भय परभय  
 में शरण भूत हो सकता है । इसी प्रकार श्रीमद्भागवत के ७  
 वें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय के २१ वें श्लोक और श्री-  
 मद्गीता के अठारवें अध्यायके ४२ वें श्लोक से विमुख अशुश्रुओं  
 को धारण करने वाले ग्रह पथ से पतित, व्यभिचारी, अ-  
 सत्यवादी, अनक असद्गुणों का भण्डारी, केवल नाम मात्र  
 के ब्राह्मणों को भाजन खलाने से परलोक में प्राण (शरण) तो  
 दूर रह पर अज्ञान कर के अन्धकार के स्थानों प्राप्त हाते  
 हैं । और न कोई पुत्र परलोक में प्राण शरण हो सकते हैं ।  
 नब कौन ऐसा भूख है जा भोगोपभोग के लिये आप के ये  
 वाक्य मानें ॥ १० ॥

मूल-खण्डमेतसोऽस्मि यदुक्तालदुःखा,  
 पगामदुःखा अणिगामसोऽस्मि ।  
 ससारमोऽस्वस्स विपस्वभूया,  
 खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥ १३ ॥

छाया-क्षणमात्रसौख्या बहुकालदुःखा,  
 प्रकामदुःखा अनिकामसौख्या ।  
 ससारमोक्षस्य विपत्तीभूता,  
 खानिरनर्थाना तु काममाणा ॥ १३ ॥

अत्रार्थ- (कामभोगा) काम भोग (तु) पद पूर्णार्थ  
 (क्षणमात्रसौख्या) क्षणिक सुख वाले (बहुकालदुःखा)  
 बहुकाल तक दुःख देने वाले हैं (प्रकामदुःखा) 'भोगों में'  
 उत्कृष्ट दुःख है (अनिकामसौख्या) किंचिमात्र सुख  
 (मसारमोक्षस्य) ससार से निवर्तन देने को (विपत्ती  
 भूता) 'ये भोग' बरी के समान (अनर्थाना) अनर्थों की  
 (गानि) गदान है ॥ १३ ॥

भावार्थ-हे पिता धी! य काम भोग क्षण मात्र के सुख देने  
 वाल है। फिर उन के परिणाम अंत में बहुत ही दुःखदायी होते  
 हैं। इन में किसी प्रकार का सुख न समझ जैसे कहा ता पवन  
 व समान दुःख और कहा विचारा करके कममान पौद्गलिक  
 सुख है। हम तो ह पिता येन सुखों पर न रीझेंगे। क्योंकि यह  
 थोड़ा सा सुख भी सम्पूर्ण मोक्ष के सुखों का बैरी है। और  
 ससार में जितने भी परिभ्रमण करने के कारण हैं वे सभी इसी  
 काम भोग रूप धान ही में से निकलते हैं ॥ १३ ॥

मूल-परिव्ययते अणियत्तकामे,  
 अतो य रात्रो परितप्पमाणे ।

अन्नप्पमत्तो धणमेसमाणे,

पप्पोति मच्चुं पुरिसे जर च ॥ १४ ॥

छाया-परिव्रजन्निवृत्तकामाऽहनि च रात्रौ परितप्यमानः ।

अन्नप्रमत्तो धनमेपयन्, प्राप्नोति मृत्यु पुरुषो जरा च ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ-(अन्नप्रमत्त) भोजन की, प्राप्ति में आश्रु, (वनम्) धन को, (प्ययन्) हूढन के लिये, (परिव्रजन्) परि-  
अमण करता हुआ, (अहनि) दिन, (च) और (रात्रौ) रात्रि  
भर, (परितप्यमानः) चिन्ता ग्रमित, (पुरुषः) मनुष्य, (अ-  
निवृत्तकामः) अतृप्त इच्छा वाला, (जरा) अयस्था को 'प्राप्त  
हो कर' (च) और, (मृत्यु) मृत्यु को, (प्राप्नोति) प्राप्त हो  
जाता है ॥ १४ ॥

मायार्थ-हे पिता श्री ! जा भोगों से दूर नहीं हुआ हे  
यह अतृप्त इच्छावाला मनुष्य विषय वासना और खान पान  
धन आदि इच्छे करने के लिय रात दिन चिंता में पड़ा  
हुआ इधर उधर भटकता फिरता है यों भटकते २ बद्दाय  
स्थाका प्राप्त होकर आत्तिर मृत्यु को प्राप्त होजाता है ॥ १४ ॥

मूल-इमं च मे अत्थि इम च नत्थि,

इम च मे किञ्च इम अकिञ्च ।

त एवमेय लालप्पमाण,

हरा हरति त्ति कह पमाण ॥ १५ ॥

छाया-इदञ्च मेऽस्तीदञ्च नास्तीदञ्च मे कृत्यमिदमकृत्यम् ।



तमेवमत्र लालप्यमानं, इरा हरन्तीति कथं प्रमाद ॥ १५ ॥

( इद्रम् ) यह 'वर्ण' (मे) मरे ( अस्ति ) ई ( च ) और  
 ( इद्रम् ) यह 'दीर्घ' (न) नह ( अस्ति ) ई ( च ) और ( इद्रम् )  
 यह 'मकान' (मे) मरेको ( कृत्वा ) करत याग्य ( च ) और  
 ( इद्रम् ) यह 'व्यापार' ( अकृत्वा ) नहीं करने याग्य है  
 ( ग्यमेव ) इम प्रकार ( लालप्यमान ) ' त्वि' लनाना है  
 ( इरा ) रात ' दिन रूपममयता ' और ( त ) उव वृत्तता  
 ( हरन्ति ) ' जय जगत्तरो ' प्राप्त करता है ( इति ) मपूर्वाथ  
 ( प्रमाद ) ' तय' आत्म्य ( कथं ) क्या ' क्रिया जार ॥ १५ ॥

द्वितीयां ' इम स्वप्न में मनुष्य मात्र इम स्थान में  
 बैठ हुए हैं कि इतना तो भर पास है, इतना धनकी और  
 आवश्यकता है । मर अमुक व्यापारता करत याग्य है ।  
 और अमुक व्यापार नहीं करत योग्य है । इन्ही स्थिति में  
 रात दिन लगा रहता है, पर यह नहीं जानता है कि रात  
 दिन समय रूप घोर जम जमाग्रहों का प्राप्त कर । निव  
 प्रयात करता है । एन्ही अदृशा में हमें धर्म कार्य में प्रमाद  
 करना हीक नहीं है ॥ १५ ॥

मूल-धण पभूय सह इत्थियार्ति,

मयणा तत्र कामगुणा पतामा ।

तय गग तप्पट जस्म लोगो,

त मन्सारीणमित्थेव तुच्च ॥ १६ ॥

छाया-धन प्रभूत मह स्त्रीभिः स्ववनास्तथा कामगुणां प्रकामाः।  
 तप कृते तप्यते यस्य लोकस्तत्परिस्वार्थीनिमिहैव युवयाः ॥१६॥

अन्वयार्थ- प्रभूत बहुत (धन) द्रव्य (सह स्त्रीभिः)  
 साथ स्त्री (स्वजनाः) परिवार (तथा) नस ही ( प्रकामाः )  
 खूब (कामगुणाः) काम भाग (तपः) कष्ट (कृते) इत्यादिको  
 प्राप्त करने के निमित्त (यस्य) निमक (लोकः) मनुष्य (तप्यते)  
 परिश्रम उठाते हैं ( तत् ) वे (स्वार्थम्) मर (युवयोः) तुमको  
 ( इहैव ) यहाँ पर ही ( स्वार्थीनिम् स्वार्थीन है । १६ ॥

भावार्थ है पुरुषों ! बनार में या धन खर्च, परिवार  
 मोगोरमोग आदिको प्राप्त करने के लिये मनुष्य अनेक प्रकारका  
 कष्ट और मोत रका परिश्रम उठाते हैं पर तुम्हें ना पता ही  
 परिश्रम किये हुए यहाँ सब सुख प्राप्त हो रहे हैं । फिर तुम्हें  
 इन सुखों को भागने के लिये शिर फेंकना पड़ेगा ॥ १६ ॥

मूल-धनेण किं धम्मपुरादिगारे,

सयणेण वा कामगुणेहि चैव ।

समणा भविस्सामु गुणोत्तधारी,

बहिविहारो अभिगम्म भिक्खु ॥ १७ ॥

छाया-धनेन किं धम्मपुराधिकार,

सजनेन वा कामगुणैश्चैव ।

श्रमणौ भविष्यामोगुणोत्तधारिणौ,

बहिविहारो अभिगम्य भिक्खाम् ॥ १७ ॥

अन्वयाँ १- ( धर्मधुराधिकारे ) यर्म है अग्रमर त्रिमके  
 एमे अधिकार में उमरु ( धनेन ) धन कर के ( किं ) क्या  
 ( वा ) अथवा ( स्वजनेन ) परिवार कर के क्या ( च ) और  
 ( कामगुणै ) कामभागों पर के ( एच ) ही ' क्या ' ( गुणौ  
 घघारिणौ ) गुण समूहको धारण करने वाले ( अमणौ ) माधु  
 ( भविष्याव ) होंगे ( भित्ताम् ) भिक्षाको । अभिगम्य )  
 ' निर्दोष , जानकर ( बहिर्विहारौ ) ' ग्राम से , रहार गमन  
 करेंगे ॥ १७ ॥

हे पिता श्री ! जिन के हृदय में घम प्रविष्ट कर गया  
 है उन्हे न धन, न स्वपन न काम भागों को ही आशय  
 कता है और न वह उनकी प्राप्ति के लिये इच्छा करता है । इसी  
 प्रकार हमको भी जो आप कह रहे हैं उन में स किसी  
 भी घातकी आशयकता नहीं है । हाँ जिन चाह रहें उन्ही  
 लिये शान्त दा न गुणों का धारण कर अप्रतिबद्ध पक्षिक  
 जैसे भूमण्डल में विवरेणें । और निर्दोष आहार पानी का  
 जान कर उन्हे भित्ता रूप में ग्रहण करने हुए समय का  
 निर्वाह करेंगे ॥ १७ ॥

मूल-जहा य अग्नी अरणीअसतो,

रपीरे घय तेल्लमहा तिलेसु ।

एमेव जाया सरीरसि सत्ता,

समुच्छ्रुई नासइ नावचिटे ॥ १८ ॥

ध्याया-यथा चाग्नि अरणितोऽमन् वीर घृत तैलमथ तिलेषु ।

पमेव जातौ शरीरे सत्ता, सम्मूर्च्छति नश्यति नापतिष्टते ॥१८॥

अन्वयार्थ—( जातौ ) हे पुरों ! ( यथा ) जैसे  
( अग्निः ) आग ( अरणितः ) अग्निफाष्टमधन मे-  
( असन् ) नहीं होने पर भी ( सम्मूर्च्छति ) उत्पन्न होती  
( चीरे ) दुग्ध में ( घृत ) घी ( अय ) शब्द की  
भेदता ( तिलेषु ) तिलों में ( तैल ) तेल ' यों ही  
उत्पन्न होजाने हैं ' ( एवमेव ) एसा ही ( शरीरे ) श-  
रीर में ( सत्ता ) जीव ' उत्पन्न हो जाते हैं ' ( नश्यति )  
' शरीर ' नाश होता है ' उस समय जीव भी ' ( न )  
हीं ( अवतिष्टते ) ठहरता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे पुरों ! जैसे अग्नि व काष्ठ मधन से अग्नि, दुग्ध  
( घी, तिलों में तेल यों ही उत्पन्न हो जाते हैं । धास्तविक रूप  
में उन में अग्नि, दुग्ध घी नहीं हैं । ऐसे ही इस शरीर में भी  
वह जीव जो तुम कहते हो वह यों ही पाच तंत्रों का संयोग  
में होने पर उत्पन्न हो जाता है । जब पाच तंत्र ( शरीर )  
रुष्ट होते हैं तब जीव ( अत्मा ) भी समूल नष्ट हो  
जाता है न स्वयं है, न नरु है न मांस केवल यह तो इन्द्र-  
जाल है । किम के लिये तुम व्यर्थ ही माधु वतकर इस  
शरीरका कष्ट पहुँचाने का सहास कर रहे हो ॥ १८ ॥

मूल—नो इदियगेज्ज्क अमुत्तभावा,  
अमुत्तभावा वि य होह निच्छो ।

अजभक्त्यहेतु नियमऽस्त बधो,  
ससारहेतु च वयति बध ॥ १६ ॥

छाया-नेत्रि द्रव्यग्राहोऽमूर्तभावात् मूर्तभावादपि च भवति नित्य ।  
अध्यात्महेतु नियताऽस्य वधः, ससारहेतु च वदति बधम् ॥ १६ ॥

अपर्याय- ( अमूर्तभावात् ) ' आत्मा का ' अरूप  
भाव होने में ( इन्द्रियग्राह्य ) इंद्रियों द्वारा ग्रहण  
( न ) नहीं हो सकता ( च ) और ( अपि ) भी ( अमूर्त  
भावात् ) अरूप होने से ( नित्य ) हमेशा ( भवति )  
होता है ( अध्यात्महेतु ) आन्तरिक दुर्गुणों का हेतु  
( अस्य ) उस ( नियत ) निश्चय ( बन्ध ) बन्धन  
है ( च ) और ( ससारहेतु ) मसार में ' परिभ्रमण रूप '  
हेतु ( बन्धम् ) बन्धन ( वदन्ति ) ' तरंग '   
कहते हैं ॥ १६ ॥

भाग्यार्थ द्व पिना भी ! शरीर नाश होने पर आत्मा  
भी नाश हो जाता है यह बात आपकी तरंग का नहीं मान  
सकते हैं । क्या यह अरुणी आत्मा इंद्रियों द्वारा पकड़ी  
जाती है ? क्यों भी नहीं अमूर्तिमान आत्मा कभी नाश  
नहीं होती । यदि तुम कदाय एक इस रूपी शरान्न अरुणी  
आत्मा का बंधन कैसे कर रखा है । उनर-जैस आकाश  
अरुणी है पर घट का आधिपत रह हुने आकाश का बंधन  
हो ही जाता है उसे घटाकाश कहेंगे । पर तु घटका नाश  
होने पर आकाशका नाश क्यों नहीं होता है । इसी तरह

से शरीर का नाश हान पर आत्मा का नाश नहीं होता है वह नाशिय अजर अमर है । आन्तरिक दुगुणों न आत्मा का बंधन में कर रही है घट आकाशवत् । आर ये ही दुगुण आत्मा के लिये मसार का हतु बन रह हैं । जब ये दुगुण आत्मा से दूर होजायेंगे तब वह आत्मा परम सुख में प्राप्त होजायगी । अत एव स्वर्ग है नर्क है मात है, सब कुछ है जा जितनी इच्छा होगा सब प्राप्त करेगा ॥ २६ ॥

मूल-जहा वय धम्ममज्जाणमाणा,  
पाव पुरा कम्ममकामि मोहा ।  
उरुद्धमाणा परिरच्छयता,  
त नेव भुज्जोऽपि समाचरामो ॥ २० ॥

छाया -यथा वय धर्ममज्जानानाः पाप पुरा कर्म अकार्षम मोहात् ।  
अवरुध्यमाना, परिरक्षमाणाः, तन्नैव भूयोऽपि समाचरामः ॥ २० ॥

अन्यार्थ ( यथा ) जैसे ( धर्मम् ) धर्मको  
( अजानानाः ) नहीं जानते हुए ( वय ) हम ( पुरा )  
पहिले ( पाप ) पाप ( कर्म ) क्रिया ( मोहात् )  
मोहमे ( अकार्षम ) क्रिया ( परिरक्षमाणाः ) चौतरफ से  
रक्षा के साथ ( अवरुध्यमानाः ) रोकें हुये हम ( तत् )  
वह पाप ( भूयोऽपि ) फिरभी ( नैव ) नहीं ( समा-  
चरामः ) करेंगे ॥ २० ॥

हे मिता श्री ! हम धर्म नहीं जानते थे तब पहिले  
अज्ञान अवस्था में माहके वश अनक पाप किय थे । और

आपने भी कई प्रकार का भूटा दर्शमला दिखाकर अभी तक समाज में रक्षाक साथ फुलला रखे थे पर अथ हम उन दुष्टों को पुनरपि जान बुझ कर नहीं करेंगे । जो आप हमें समझा रहे हैं यह आपका स्वार्थ है ॥ २० ॥

मूल-अब्भाहयमि लोचम्मि, सञ्जउ परिवारिए ।

अमोहाहिं पडतीहिं, गिरसि न रह लभे ॥२१॥

छाया अभ्याहत लोक, सर्वास्तु परिवारिते

अमोघाभि पततीभि, गृहे न रति लभावहे ॥२१॥

अन्वयार्थ-( लोके ) लोक ( अभ्याहते ) पीड़ित ( सर्वास्तु ) सर्व ' दिशा ' ( परिवारिते ) विंशद्भ्या ( अमोघाभिः ) अभिश्रामधारा ( पततीभिः ) गिरती हुई ( गृहे ) घर में ( रति ) आनन्द ( न ) नहीं ( लभावहे ) प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

भावार्थ-इतिहास । इस समाज में प्राणिमात्र पीड़ित और सर्व दिशाओं में परिप्रेषित हो रहे हैं । सर्वत्र अमोघ धारा पड़ रही है । इस लिय हम देने समाज में आनन्द कैसे पा सकत हैं ॥२१॥

मूल-केण अब्भाहयो लोयो, केण वा परिवारियो ।

का वा अमोहा बुत्ता, जाया चिंतावरो हुमि ॥२२॥

छाया-केनाभ्याहतालाय, केन वा परिवारितः ।

का वा अमोघाह्ता, जानौ चिन्तावरो भवामि ॥२२॥

अन्वयार्थ-( जातौ ) हे पुरों ! ( केन ) किस तरह

(लोकः) जन (अभ्याहतः) पीड़ित (वा) अथवा (केन) किस तरह (परिवारितः) परिवर्णित है (वा) अथवा (का) कौनसी (अमोघा) अविश्राम धारा (उक्ता) कही (चिन्तापरः) चिन्ता ग्रमित (भवामि) होता हूँ ॥२१॥

भावार्थ—हे पुत्रों! किस प्रकार इस ससार में प्राणिमात्र पीड़ित और वेष्टित हो रह हैं। और कौनसी अमोघ धारा पढ रही है। तुमारी बातें सुन कर चिन्ताग्रसित हो रहा हूँ। इस का स्पष्टीकरण किये। यना मेरे चित्त को शान्ति नहीं होगा ॥२१॥

मूल-मच्चुणाऽऽभाह्यो लोगो, जराए परिवारिओ ।  
अमोहा रयणी वुत्ता, एव ताय वियाणह ॥२३॥

छाया-मृत्युनाभ्याहता लाको, जरया परिवारितः ।

अमाघा रजनी उक्ता, एव तात विजानीयात् ॥२३॥

अवयार्थ (तात) हे पिता ! (लोकः) प्राणी (मृत्युना) मृत्यु से (अभ्याहतः) पीड़ित और (जरया) वृद्धावस्था कर क (परिवारितः) घिरे हुए हैं। (रजनी) रात 'उपलक्षण से दिन रूप' (अमोहा) अविश्राम धारा 'पढ रही है एसा तत्वज्ञों न' (उक्ता) कहा है (एव) इस प्रकार (विजानीयान्) समझो ॥ २३ ॥

भावार्थ—हे पिता ! इस ससार में प्राणिमात्र मृत्यु के दुःख से पीड़ित और वृद्धावस्था कर के घिरे हुए हैं सदैव रात दिन समय रूप अविश्राम रहित धारा पढ रही है इस प्रकार आप अपने हृदय में प्रश्नों का उत्तर समझ लीजियेगा ॥ २३ ॥



मूल-जा जा चञ्चड रघणी न सा पडिनियत्तई ।

अहम्म कुणमाणस्स, अफला जन्ति राड्यो ॥२४॥

भाषा-या या प्रजति रजनी, न सा प्रतिनिवर्तते ।

धर्मं कुर्वतास्तस्य, यान्ति रात्रयः ॥ २४ ॥

अन्वयार्थ-(या या) जा जो ( रजनी ) रात्रि ( प्रजति ) जाती है ( सा ) यह ( न ) नहीं ( प्रतिनिवर्तते ) पीछी लौट कर नहीं आती है । अहम् । पाप को ( कुर्वतस्तस्य ) करने वाले की ( ति ), तिथय ( रात्रय ) रात्रि ( अफला ) निष्फल ( यान्ति ) जा रही है ॥ २४ ॥

ह बिना धी ! जो जो रात्रि और दिन जा रहे हैं । ये पीछे लौट कर कभी नहीं आन क हैं । एसा अपूय ममय पाकर मनुष्य पाप कर रहे हैं उन के लिय यह ममय तत्कालसा जा रहा है ॥ २४ ॥

मूल-जा जा चञ्चड रघणी, न सा पडिनियत्तई ।

धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राड्यो ॥२५॥

भाषा-या या प्रजति रजनी, न सा प्रतिनिवर्तते ।

धर्मश्च कुर्यातस्तस्य सफला यान्ति रात्रयः ॥ २५ ॥

( या या ) जो जा ( रजनी ) रात्री ( प्रजति ) जाती है ( सा ) यह ( न ) नहीं ( प्रतिनिवर्तते ) पीछी लौट कर आती है ' एसा ममभू कर ' ( धम्मं ) धर्मको ( च ) पद पूर्वार्थ ( कुर्यातस्तस्य ) करने वाले की ( रात्रयः ) रात्रि ( सफला ) सफल ( यान्ति ) जा रही है ॥ २५ ॥

# भृगु चरित्र

। चित्र परिचय के लिये, घटना क लिय नहीं है ।



गनों छटकें माधुओं का देखकर भयभीत होते हुए गँव में जगलही और भागे जा रहे हैं। जग वें दोनों बट वृक्ष पर चढ़ कर पत्तों की छाट में छिप रहे हैं। मुनि आहार पानी करने को बैठे पों ही दोनों छटक बट में उतर कर जमस्वार कर रहे हैं।



मावाँ हे पिता श्री ! रात दिन रूप जो अपूर्ण समय  
 जा रहा है, वह लैट कर कमी भी पीड़ा आनेका नहीं है।  
 एसा समझ कर दानों जन धार्मिक कार्योंमें समय बिता  
 रह है उन का जन्म य समय सार्थक है । शन एउ पेसा  
 अपूर्ण समय जान कर अब हम हमारा समय निष्फल नहीं  
 बात देगे आप हमे धर्म करने हय न गेके ॥ २५ ॥

मूल-एगत्रो संयसित्ता ए दुहयो सम्मतसजुया ।  
 पच्छाजाया गमिस्सामो भिक्खमाणा कुले कुले ॥२५॥

ध्याया-एकतः समुप्य द्वय सम्यक्त्वसयुताः ।

पश्चान्नातो गमिष्यामो, भिक्षमाणा कुले कुले ॥२६॥

अन्यार्थ-( जातौ ) हे पुत्रों ! ( द्वये ) तुम दानों

हम दोनों ( एकतः ) एक जगह ( समुप्य ) निवास कर  
 ( सम्यक्त्वसयुताः ) सम्यक्त्व महित होये पश्चात् )  
 फिर ( कुले कुले ) पर घर में ( भिक्षमाणा ) भिक्षा  
 करत हुए ( गमिष्यामः ) पर्यटन करेंगे ॥ २६ ॥

भावार्थ-हे पुत्रों ! तुम दानों भ्राताओं और हम दोनों  
 तुम्हारे मान पताओं एव चारों ही अभी हाल एक ही  
 स्थान में सम्यक्त्व महित गृहस्थायाम में निवास कर यथा  
 शक्य अन्न धर्मोपार्जन करें । फिर वृद्धापस्था आने पर  
 सुविधिति ग्रहण कर उच्च कुलोंमें निर्दोष आहार पानी की  
 भिक्षा करते हुए दशाटन करेंगे ॥ २६ ॥

मूल-जस्सऽत्थि मच्छुणा सक्खं, जस्स वत्थि पलायण ।  
 जो जाणइ न मरिस्सामि, सो हु कवे सुण सिया ॥२७॥

इस प्रकार पिता पुत्र के परस्पर घातालाप होने पर  
 पिताने जान लिया कि ये अथ समा में रहने के नहीं हैं ।  
 जितन भा में न इनका रागन क प्रयत्न किया वे मय यौही  
 गय । जय ये दोनों पुत्र समा गमित्याग कर रहे हैं ना मेरा  
 समा में रहना अयोग्य है । एसा विचार कर भृगु पुराहित  
 अपना प्रियवति स यो कहने लगा ॥

मूल-पहीणपुत्रस्तु नृत्वि चासौ,  
 चाशिष्टि भिक्षवाचरियाइ कालो ।  
 सहादि रुग्णो लहई समाधिं,  
 छिन्नाधिं साहाहि तमेव स्थाणु ॥ २६ ॥

जया प्रहीणपुत्रस्य गलु नास्ति रामो,  
 चाशिष्टि भिक्षाचर्याया काल ।  
 शाखाभिर्वक्त्रा लभते समाधिञ्छिन्नाभिः  
 शाखाभिः स एव स्थाणु ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ-( चाशिष्टि ) इ चाशिष्ट गात्रगाली ( प्रही  
 णपुत्रस्य ) पिता पुत्र बालका ( खलु ) निश्चय चाम्. )  
 ' समा में ' निशाम करना ' योग्य ' ( न ) नहीं ( अ-  
 स्ति ) है ' उसका ता ' ( भिक्षाचर्याया. ) भिक्षावृत्ति  
 का ( काल ) समय है ' जैम ' ( वृत्त. ) पद ( शा-  
 खाभिः ) शाखाओं कर क ( समाधिं ) आनन्द को  
 ( लभते ) प्राप्त होता है ( शाखाभिः ) शाखाओं कर के

( छिन्नाभिः ) रहित ( स ण्व ) उर्ही घृत् ( स्थाणुः )  
स्तम्भ ' क समान है ' ॥२६॥

भावार्थ-ह प्रशिष्ट गात्र में उत्पन्न होने वाली पाण्डलमा !  
दोनों पुत्रों का मैं न बहुत समझाया गर वे मेरे कथन का नहीं  
मानत हुए मन्दर का पारत्याग कर रहें । न लिये विना पुत्र  
मेरा भा मन्दर में रहना योग्य नहीं है । क्योंकि अभोगी दानों  
पुत्र तो दीक्षा ले रहे हें । और मैं फिर भी । उपर्यो की रालमा में बैठा  
रहू यह कभी होन का नहीं मेरा भी । भक्षावृत्ति करन का समय  
है । जम घृ शाखाओं से शान्त का प्राप्त होना है । और वही  
वृत्त शाखा करके राहन सुशोभित नहीं होना दुःख, धने के समान  
दिखाई देता है ॥ २६ ॥

मूल-पद्याविहृणो व जहेव पक्षी,  
भिचाविहृणो व रणे नरिन्द्रो ।  
विचन्नसारो वणिउन्व पोण,  
पहीणपुत्तोमि तथा अहपि ॥ ३० ॥

द्वया-पक्षिहीना वा यथैव पक्षी,  
भृत्यविहीनो वा रणे नन्द्र ।  
विपन्नमागन्निग् वा पोत,  
प्रहीणपुत्रोऽस्मि तथाऽहमपि ॥ ३० ॥

अन्यार्थ-( यथैव ) जैसे ( पक्षविहीन. ) पर विना  
( पक्षी ) पक्षी जानकर ( वा ) अथवा ( रणे ) संग्राम में

लाभमलाभञ्च दुग्धं च,  
मत्स्यद्यमाणश्चरिष्यामि मौनम् ॥ ३२ ॥

अचयार्थ ( भोगिनि ) इ भागेच्छुभा ( रसा ) भोगों को  
( मुक्ता ) भाग लिय ' इन का नहीं छाड़ेंगे ना ' ( वयः )  
अवस्था ( न ) मुक्त ना ( जहाति ) त्याग जायगा ( जीवि  
तार्थ ) स्वर्ग में विशप' जिन लिय ( भोगान् ) भागों  
का ( न ) नहीं ( प्रजहामि ) त्यागता हू ( लाभ ) प्राप्ति  
( च ) और ( अलाभम् ) अप्राप्ति ( च ) और ( सुखम् )  
सुख ( दुःखम् ) दुःख ( सत्यद्यमाण ) समभाव से देयता  
हुआ ( मौनम् ) साधुवृत्तियों ( चरिष्यामि ) प्राप्त करूंगा ॥ ३२ ॥

भाषार्थ-हे भागेच्छुका प्राणप्रिय ! ससार के पौद्गलिक सुखों  
का अनुभव अच्छी तरह मे मैं न कर लिया है । यदि मैं इन भोगों  
को नहीं छाड़ूंगा तो योजन अवस्था मुक्त को परित्याग कर जायगा ।  
इस लिये पहले ही से भोगों का वाग याग करना श्रेष्ठ है । दात  
गिरन पर इक्षु चूसन का वाग करना अज्ञानता है । और वसा भी  
मन मः कना कि उपलब्ध भोगोपभाग न अधिक भागों की प्राप्ति  
के लिये ससार छाड़ रहा हू मैं ता केवल आत्मन सुखों के लिये  
ही ससार परित्याग कर रहा हूँ । मुक्त स्वगाद की प्राप्ति अप्राप्ति  
पौद्गलिक सुख दुःख न कोई प्रयोजन नहीं है । सम भाव से देय  
ता हुआ साधुवृत्त प्राप्त करूंगा ॥ ३२ ॥

मूल-मा हू तुम सोचरियाण सभरे,

जुएणो व हसो पडिसोयगामी ।

भुंजाहि भोगाइ मण समाण,

दुक्खं खु भिस्सवाययिरा विहारो ॥३३॥

छाया—मा खलु त्व सौंदर्याणामस्मार्पी,

जार्ण इव दमः प्रतिस्त्रोतोगामी ।

भुक्त्व भोगान् मया सम,

दुःख खलु भिक्षाचर्या विहारो ॥ ३३ ॥

अन्यार्थ—( प्रतिस्त्रोतोगामी ) प्रतिकूल स्रोतको जानेवाला ( जीर्ण ) पुगने ( हस ) हस ( एव ) जैम ( त्वम् ) तुम ( सौंदर्याणाम् ) एक उदरसे उत्पन्न होने वाले आताओं का ( मा ) कही ( खलु ) निश्चय ( अस्मार्पी ) स्मरण करोगे । इस लिये ( मया ) मेरे ( सम ) साथ ( भोगान् ) भोगों का ( भुक्त्व ) भोगो ( भिक्षाचर्याः ) भिक्षा वृत्तिका ( विहारः ) गमन ( दुःखम् ) दुःखमयी ( खलु ) निश्चय है ॥ ३३ ॥

भावार्थ—हे प्राणेश्वर ! दीक्षा लने के बाद कुटुम्बियों

क भोगों की तरफ तुमारा कहीं ध्यान तो आकर्षित न होजाय ! जैसे नदी के किनारे पर हँसों के टोलों में से एक बद्ध हँस अपनी सहचारिणी व कुटुम्बियों की घात पर तनिरु भी ध्यान



नहीं देखकर पहले विचारें जाने क लिय नदीं क प्रतिकूल प्रवाह में पड़गया । जब मध्यभाग में उस कष्ट पहुँचा तब उसन अपनी महत्कारिणी व कुटुम्भियों का याद किया कि मेरी महत्कारणा न मुझ बहुत रोका था पर मैं न नया माना । एस द्वा ह अनिराज तुम भी दीक्षा रूप प्रवाह में याद करते हुए । फिर पश्चाताप करोग कि अर मेरी स्त्री ने मुझ समय लत बहुत राका था । परंतु मैंने उसका कथन नहीं माना । एमा अरम्या में घड़ा आप न धमके रदाग, न कम के । साधुवृत्ति सहन नहीं ह महान कठिन है । इस से तो यह अर्था है कि मसार में रहकर सुख भागो । इस क मियाय और न्या है ॥ ३३ ॥

मूल—जहा य भौंडं तणुय भुयगो,  
निम्मोयणिं हित्त पलेइ मुत्तो ।  
एमेण जाया पयहति भोण,  
तेऽह कथ नानुगमिस्समेको ॥ ३४ ॥

छाया—यथा च भोगिनि ! तनुजा भृजगमो ।  
निमोचना हित्ता पयति मुक्ता ।  
एवमर्ता जार्ता मचहीतो भागान् ।  
तऽह कथ नानुगमिष्याम्यक ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थ—( भोगिनि ) हे भोगेच्छका ! ( च ) और ( यथा ) जैसे ( भृजगम ) सर्प ( तनुजाम् ) शरीर स उत्पन्न होनेवाली ( निमोचनी ) कचुमी को ( हित्ता )

छाड़कर ( मुक्तः ) मुक्त होने पर ( पर्येति ) भागजाता है  
 ( एवम् ) इस प्रकार ( पत्नी ) ये ( ते ) तुम्हारे ( जालौ )  
 पुत्र ( भोगान् ) भोगों को ( प्रजहीतः ) त्यागन कर  
 दिये है ( एकः ) एकेला ( अह ) मैं ( कथं ) कैसे ( न )  
 नहीं ( अनुगमिष्यामि ) साथ जाऊँगा ॥ ३८ ॥

भावार्थ—ह भोगेच्छुका प्रिय पति ! जैसे सप, तासे उ  
 त्पन्न दानेवाली कशुकाको छोड़कर भाग जाता है । पुन  
 उमी कशुकाको लेना तो दूर रहा पर उनकी तरफ आँख  
 उठाकर भी नहीं दग्यता है । ऐसे ही तेरे दानों पुत्र शरीर  
 न उत्पन्न दाने वाले भोगप्रभोगों के सुर्ग का परित्याग कर  
 साधु वनन को जा रह ह । तो भी मैं एकेला उनके साथ सा  
 धुवृत्ति ग्रहण करने को नहीं जाऊँगा क्या ? ॥ ३८ ॥

मूल—ठिँदितु जाल अजल व रोहिया,  
 मच्छा जहा कामगुणे प्रहाय ।  
 धीरेयमीला तवसा उदारा,  
 वीराहु भिक्खायरिय चरन्ति ॥ ३५ ॥

छाया—ठिट्या जालमवलमिअ रोहिता,  
 पत्त्या यथा कामगुणान् प्रहाय ।  
 धीरेयशीला तपसा उदारा,  
 धीरा यम्मान् भिक्खाचर्या चरन्ति ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थ—( यथा ) जैम ( रोहिता ) रोहित जा  
ति का ( मत्स्या ) मत्स्य ( अबलम् ) जीर्ण ( जालम् )  
जालको ( छित्वा ) नाश करके ' स्वेच्छा मे विचरता है '  
( इव ) ऐसे ही ( धौरेयशीला ) प्रबल है धर्म क्रिया में  
सम्भाव जिनका ( तपसा ) तपस्या ( उदारता ) प्रधान  
( धीरा ) बुद्धिमान ( कामगुणान् ) कामभोगों को ( प्रहाय )  
त्याग कर ( यस्मात् ) ' मोक्ष ' जान के लिये ( भिक्षा-  
चर्या ) भिक्षा वृत्तिका ( चरन्ति ) प्राप्त करते हैं ॥ ३५ ॥

भावार्थ—हे प्रियपति ! जैल रोहित जातिका मत्स्य जीर्ण  
जाल को अपनी तीक्ष्ण पूछ ने काटकर जल में स्वेच्छा में  
विचरता है । ऐसे ही प्रधान तप के धारी प्रिया में उत्कृष्ट  
भाव है जिनके ऐसे वे भोग रूप जाल को नष्ट पर समय  
माग की जा रहे हैं । ३५ ॥

मूल—नहेव कुचा समड्वमता,

तयाणि जालाणि दलित्तु हसा ।

पल्लेति पुत्ता च पई य मज्झ,

• ते ह कह नाणुगमिस्समेका ॥ ३६ ॥

छाया—नभसीय क्रौचा समतिक्रामत्,

स्ततानि जालानि दलयित्वा हसा ।

परियन्ति पुत्रौ च पतिश्च मम,

तानह नव नानुगमिष्याम्यका ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ—( नभसि ) आकाश में ( कौचाः ) कौंच पक्षी ( इव ) जैसे ( समतिक्रामन्त ) एक देश को उलघन करजाते हैं ( च ) और ( हसाः ) हम पक्षी ( ततानि ) विस्तीर्ण ( जालानि ) जालको ( दलधित्वा ) काट कर 'स्वेच्छा से विचरते हैं ऐसे ही' ( पुत्रौ ) दोनों पुत्र ( च ) और ( भभ ) मेरे ( पतिः ) प्राणनाथ ( तान् ) उन भोगों को त्यागकर समय लेने का' ( परियन्ति ) जा रहे हैं ( एका ) एकली ( कथ ) कैसे ( न ) नहीं ( अनुगमिष्यामि ) साथ जाऊँगा ॥ ३६ ॥

भावार्थ—हे प्राणपते ! आपका सहाय मेरे कलेजे का पार कर गया है । अहा हा खूबही अच्छा दृष्टान्त दिया । जैसे कौंच पक्षी एक देश का उलघन कर दूसर देश को चला जाता है । हम लम्बी चौड़ी जालको काटकर स्वेच्छा से विचरता है । एस ही दोनों पुत्र और आप मोह माया रूप जालका काटकर समय मार्गका प्राप्त करने के लिये जा रहें हैं तब मैं एकली क्या समय मागको प्राप्त करने के लिये साथ नहीं आऊँगा ॥ ३६ ॥

मूल—पुरोहित्य त समुय सदार,  
 सोचाभिनिःश्वम्म पहाय भोए ।  
 कुडुवसार विडलुत्तम त,  
 राय अभिक्ख समुवाय देवी ॥ ३७

ध्याया—पुरोहित व समुत्त सदार,  
 श्रुत्वाऽभिनिष्क्रम्य प्रदाय भोगान् ।  
 कुटुम्बसार विपुलोत्तम त,  
 राजानमभीक्ष्ण्य ममुवाच देवी ॥ २७ ॥

अन्वयार्थ—( समुत्तम् ) पुत्र सहित ( सदारम् ) स्त्री  
 सहित ( तम् ) वह ( पुरोहितम् ) पुरोहित ( भोगान् ) भोगों  
 को ( प्रहाय ) परित्याग कर ( अभिनिष्क्रम्य ) मसार से  
 निकलते हैं ' ऐमा ' ( श्रुत्वा ) सुन कर ( विपुलोत्तमम् ) प्रचूर  
 प्रधान ( कुटुम्बसार ) धन धान्यादि ' ग्रहण कर्त्तृ वाले '  
 ( तम् ) उस ( राजानम् ) राजा को ( देवी ) पटराणी  
 ( अभीक्ष्णम् ) बार बार ( ममुवाच ) कहने लगी ॥ ७॥

भावार्थ—पुरोहित और उस की स्त्री य दोनों पुत्रों के वैराग्य  
 मयी चारों को शरण कर पुरोहित व स्त्री और दोनों पुत्र चारों  
 ही व्यक्ति भोगों को परित्याग कर रहे हैं । और दोनों रूपों की  
 सम्पत्ति को ज्यों का त्यों घर पर छोड़ कर सयम माग का ग्रहण  
 करने के लिये जा रहे हैं । यह सब सुन ही राजा उसका मन्त्र  
 सम्पत्ति राज्य भण्डार में डलवाने का अनुचरों का हुक्म दे दिया  
 तदनु यह सूचना दासों द्वारा राणी के मालूम होते ही अपन प्राण  
 पात नरेश के पास आ कर यों कहने लगी ॥ ३७ ॥

मूल—उनासी पुरिसो राय, न सो होइ पममिथो ।  
 माहणेण परिचत्त, धण आढाउमिच्छसि ॥ ३८ ॥

ह्याया—वान्ताशी पुरुषाराजन् न सोभवति प्रशंसितः ।  
 ब्राह्मणेन परित्यक्त धनमादातुमिच्छामि ॥३८॥

अन्वयार्थ—[ राजन् ] हे राजन् [ वान्ताशी ] प्रमन किसे  
 हुये पत्नार्थ को खाने वाला [ पुरुषः ] मनुष्य [ सः ] वह  
 [ प्रशंसितः ] प्रशंसा पात्र [ न ] नहीं [ भवति ] होता  
 है [ ब्राह्मणेन ] ब्राह्मणेने [ परित्यक्त ] त्यागा हुआ  
 [ धनम् ] धन [ आदातुम् ] लेने को [ इच्छामि ] इच्छा  
 करते हो ॥ ३८ ॥

भावार्थ—हे प्राणनाथ नृपते ! ज़िन्ने किसी पुरुष को उठी हुई  
 उसी ही उठी को कुत्ते जाग के सिवाय उही पुरुष पुन भक्षण  
 करना चाहे तो वह क्या प्रशंसनीय हो सकता है ! कभी  
 भी नहीं । ऐसे ही हे नाथ आप जो धन ब्राह्मण का सकरप  
 कर चुके । उसी को आप लना स्वीकार कर रहे ह । यह कहा  
 तक योग्य और उचित है । आप स्वयं हृदय पर हाथ धर कर  
 इन बात को कुट्ट देर क लिय सोचें ॥ ३८ ॥

मूल—सर्व्व जग जइ तुह, सर्व्व वापि धण भवे ।  
 सर्व्वपि ते अपज्जत्त, नेव ताणाय त तव ॥३९॥

ह्याया—सर्व्वजगत्प्रदि तव, सर्व्व वापि धन भवेत् ।  
 सर्व्वमपि तमापर्याप्तनैव प्राणाय तत्तव ॥३९॥

अन्वयार्थ—[ यदि सर्व्वम् ] यदि सर्व्व [ जगत् ] लोक  
 [ चापि ] और भी [ सर्व्वम् ] सर्व्व [ धनम् ] धन [ तव ]

तुम्हारे [ भवेत् ] हो जावे 'तदपि' [ तत्र ] तुम्हारे [ सर्व  
मपि ] सर्व भी [ अपर्याप्तम् ] अपूर्ण है [ तत् ] वह 'सत्र  
जगत् व धन' [ तत्र ] तुम्हारे [ त्राणाय ] रक्षा के लिये  
[ नैव ] नहीं है ॥ ३६ ॥

भाषा-इ प्राणेश्वर ! यदि आपकी सारा जगत् का राज्य  
मिल जाने और पृथ्वी भू का सब धन दस्तगत हो जाय । तदपि  
आपकी इच्छा कभी भी परिपूर्ण नहीं होगी । क्योंकि धन व  
राज्य बढ़ता जायगा क्योंकि इच्छा बढ़ती ही जायगी फिर वही  
राज्य और धन अत समय में कुछ भी काम आन वाले नहीं  
हैं । और न व यमराज की दी हुई याचना में रक्षा कर सकेंगे ॥३६॥

मूल—मरिहिसि राय जया तथा वा,  
मणोरमे कामगुणे पहाय ।  
एषो ह धम्मो नरदेव ताण,  
न विज्जइ अज्जमिहेह किञ्चि ॥४०॥

छाया—मरिष्यसि राजन् यदा तदा वा,  
मनोरमान् कामगुणान् विहाय ।  
एष एव धर्मो नरदेव प्राण,  
न विद्यतऽन्यदिहेह किञ्चित् ॥४०॥

अन्वयार्थ—[ राजन् ] हे नरेश [ यदा तदा वा ] जब  
तत्र [ मनोरमान् ] मनोहर [ कामगुणान् ] कामभोगों को  
[ विहाय ] छोड़ कर [ मरिष्यसि ] मरुंगे [ नरदेव ]

# भृगु चरित्र



दोनों लडकों को ठुलने के लिए भृगु पुराहित और  
वनकी री दानो गौबम निकल कर जंगल की और जा रहे  
हैं । और लडकू दोनों मामन आरह है ।





हे 'मनुष्यों के दम [ एक एव ], एक ही [ धर्म ] धर्म  
[ त्राणम् ] शरण भूत 'होगा' [ अन्यत् ] दूमा [ इहेह ]  
यहाँ पर [ किञ्चित् ] कोई भी [ न ] नहीं [ विद्यते ] है ॥४०॥

मातार्थ ह राजन् ! इन प्रधान काम भोगों का छोड़ कर  
किसी एक समय में आकर मरना पड़ेगा अमर हो कर कोई  
नहीं आया है । देखिये कैसे २ घण्टा के राजा जो कि मरना  
ज नते ही न थे वे भी दुनिया से चल बसे, सब उन के पेश  
आराम की चीजें यहाँ धरी रह गई हैं । पर मरने में माता, पिता  
भगिनी, आरत पुत्र, धन, राज, कोट, जिला कोई, भी चीज  
शरणभूत नहीं हो सकेंगे । फल एक धर्म ही अवश्य आप की,  
यातना में हाथ घटायेगा ॥ ४० ॥

राजा अपनी प्रियपत्नि के मार्मिक वचनों को सुनते ही  
चमक कर बोला रानी ठर कुट्ट ठर, बोलने में इतनी जल्दी मन  
कर । क्या तेरा चित्त व्याकुल तो नहीं हो गया है । राज्य में  
धन आता है वह सब पेना ही है । ये तेरे सब रत्न जड़ित  
चन्द्रहार आदि आभूषण इन्हीं धन के पने हुए हैं । जैसा तू मुझे  
उपदेश कर रही है तो क्या तू अमर हो कर आई है यह तो  
एक बहाना है जैसा किसी कवि ने कहा कि 'पर उपदेश  
कुशल बहुतेरे  
" हे राणी पहिले तो राज्य  
छाड़ साधवी धन जा फिर मुझ उपदेश करना । इस प्रकार  
अपने प्राणेश्वर के वचन सुनते ही राजा से राणी यों बोली ॥

मूल—नाह रमे पत्रियणि पजरे वा,  
सताणल्लिन्ना चरिस्सामि'मोण ।





अकिंचना उज्जुकटा निरामिसा,  
परिग्रहारम्भनियत्तटोसा ॥ ४१ ॥

छाया—नाह रमे पत्तिणि पजरे इय,  
त्रिधमन्ताना चरिप्यामि मौनम् ।  
अकिंचना उज्जुकटा निरामिसा,  
परिग्रहारम्भनियत्तटोसा ॥ ४१ ॥

अर्थ—[ पजरे ] पिंजरे में [ पत्तिणीय ] पत्तिणी के  
जैसे [ अहम् ] मैं [ न ] नहीं [ रमे ] आनन्द पानी हैं  
'अत एव' [ अकिंचना ] द्रव्य रहित [ उज्जुकटा ] मरल  
[ निरामिसा ] विषय रहित [ आरम्भपरिग्रहटोपनिवृत्ता ]  
आरम्भ परिग्रह दोषों में विरक्त हो [ मौनम् ] साधुवृत्ति व्रत  
[ चरिप्यामि ] यहीकार करूंगा ॥ ४१ ॥

भावार्थ—हे प्राणनाथ ! जैसे पत्तिणी पिंजरे में खान पान  
आदि सब सुविधाएँ होने हुए भी दुःख अनुभव करता है ।  
ऐसे ही इस राज्य और भव रूप पिंजरे में मैं भी आनन्द नहीं पा  
रही हूँ । यदि आप मुझ आशा देते तो मैं स्नह रूप मन्तन को  
छोड़ कर विषय यासना में मुँह मँडूँ । सब ये हीरे पत्थर से  
मदित रहने शरीर से उतार कर सबल प्रभावित करने । और  
आरम्भ परिग्रह से उत्पन्न होने वाले दोषों का परिहारा कर  
आयिका अथात् साधु बनूँगी ॥ ४ ॥

मूल—द्विगिणा जहा रणे,

दुष्कृमाणेषु जंतुषु ।  
अन्ने सत्ता पमोयति,  
रागद्वेषवस गया ॥ ४२ ॥

छाया—दवाग्निना यथाऽरण्ये, दह्यमानेषु जन्तुषु ।

अन्ये मत्त्वाः प्रमोदयन्त, रागद्वेषवशगताः ॥४२॥

अन्वयार्थ—[ यथा ] जैसे [ दवाग्निना ] दावानल कर के [ जन्तुषु ] प्राणि [ दह्यमानेषु ] जलते हुए [ अरण्येषु ] वन में [ रागद्वेषवशगता ] रागद्वेष के वशीभूत हुए [ अन्ये ] दूसरे [ मत्त्वाः ] प्राणि [ प्रमोदयन्ते ] आनन्दित हात हैं ॥ ४२ ॥

भावार्थ—हे नाथ ! जैसे किसी एक जगल में दावानल कर के हिरन परगोश आदि मूक प्राणी जल रहे थे, उस समय दावानल के निःसृत्यति दुमरे अहरन परगोश आदि जानवर जिन के समीप अभी तक उहाँ अग्नि पहुँची नहीं वे सभी प्राणी उस घटना को देख कर चढ़े खुशी मगाने हे । पर वे मूढ यों नहीं जानते हैं कि जो घटना उहाँ हो रही है वही घटना हमारे पर भी क्षण मात्र में घटने वाली है ॥ ४२ ॥

मूल—एवमेव धय मृदा,  
कामभोगेषु मुच्छ्रिया ।  
दुष्कृमाण न दुष्कृमाणो,  
रागद्वेषवशिणा जग ॥ ४३ ॥

छाया—पत्रमत्र वय मूढा, कामभागषु मूर्च्छिता ।

- दृश्यमानश्च युध्यामहे, रागद्वेषाग्निना जगत् ॥ ४३ ॥

अवयवार्थ—( एत्रमेव ) उसी तरह मे ( जगत् ) अपन भी ( मूढा ) मूढ हो रह हैं ' जो कि ' ( कामभागेषु ) कामभागों में ( मूर्च्छिता ) मूर्च्छित होत हुए ( रागद्वेषाग्निना ) राग द्वेष रूप अग्नि कर क ( दृश्यमान ) चलते हुए ( जगत् ) समार का न नहीं ( युध्यामहे ) जानते हैं ॥ ४३ ॥

भाषा—हे प्राणेश्वर ! जैसे वे प्राणी आरों को चलते हुए देख कर आनामृत हात हैं । इसी प्रकार अपन भी कैसे मूढ हैं जो कि काम भागों में मूर्च्छित हो कर राग द्वेष रूप अग्नि कर क नार जगत को जलन हुए दग्ध कर अपन ज्ञान प्राप्त नहीं करने हैं । जैसे य भर रहे ह और उनक लिये जा घटा हो रहा है यह एक रोज अपने पर भा होगी ॥ ४३ ॥

मूल—भोगे भोचा वमिता य,

लघुभूयविहारिणो ।

आमोयमाणा गच्छति,

दिया कामकमा इव ॥ ४४ ॥

छाया—भोगान् भुक्त्वा वान्त्वा च,

• लघुभूतविहारिणः ।

आमाद्यमाना गच्छति,

द्विजा कामक्रमा इव ॥ ४४ ॥

अवयवार्थ--(भोगान्) भोगों को (भुक्त्वा) भोग कर (च) और 'उत्काल में' (वान्त्वा) त्याग कर (लघुभूतविहारिणः) लक्ष्मी विहार (कामक्रमाः) यथेच्छा पूर्वक (द्विजा इव) पक्षि व जैसे यद्वा ब्राह्मण के जैसे (आमोदमानाः) आनन्दित होते हुए (गच्छन्ति) विचरते हैं ॥ ४४ ॥

भावार्थ--हे प्राणेश्वर ! अपन सत्कार में सब पेश आराम कर चुके हैं फाइ भी बात की कमी नहीं रही है । अत एव अब इन्हें भोगों को परित्याग कर ड्रय से भाग से हलके पायु के समान यथेच्छा पूर्वक आनन्दित होते हुए स्वयं मार्ग में विचरें । जैसे पक्षि यद्वा प्रगुपुरोहित और उमकी ग्री व दोनों पुत्र सत्कार का परित्याग कर स्वयं मार्ग में विचरते हैं ॥ ४४ ॥

मूल—उमे य वद्धा फटनि,  
मम हस्तमागया ।  
वय च सत्ता कामेसु,  
भविस्मामो जहा इमे ॥ ४५ ॥

छाया—उमे च वद्धा स्पन्दते,  
मम हस्तमार्थ्य आगता ।  
वयञ्च सक्ता कामेषु,  
भविष्णामोयथेमे ॥ ४५ ॥

अवयवार्थ--(आर्य्य) हे आर्य्य (वद्धा) सुगिञ्जत (उमे) ये भोग (मम) मेरे (च) और 'उपलक्षणमे तुमारे' (हस्तम्)



भागार्थ-हे नाथ ! गृध्र पक्षि के समान काम भोगों को मन्मार  
 बधक जानकर परित्याग कर दे । जैसे सर्प गरुड़ से भयभीत  
 हाता हुआ उसके पास से चपत हो जाता है । एस ही  
 अपन भी इह काम भागों से चपत हो कर सयम स्थान में  
 विगुरे ॥ ४७ ॥

मूल--नागोव्य बधणं छित्ता, अप्पणो वसहिं या ।

एय पत्थ महाराय, उसुयारित्ति मे सुय ॥ ४८ ॥

छाया--नाग इव बधनञ्छिन्नात्मना वमति व्रतत् ।

एतत्पथ महाराज, इच्छुकार इति मे श्रुतम् ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थ--( इच्छुकार ) इच्छुकार नाम के ( मह  
 महाराज ( नाग इव ) हाथी के जैम ( बधनम्  
 ( छित्त्वा ) तोड़ कर ( आत्मन ) आ मा  
 नियाम स्थान को ( व्रजेत् ) जावे ( व्रतत् )  
 हितकारी ' मार्ग को ' ( इति मे ) मैं न  
 किया था ॥ ४८ ॥

भाषा-हे इच्छुकार नाम से सुशोभित  
 अपना मनबूत बधन भी जैसे तैस  
 चला जाना है । एस ही आत्मा भी ज म  
 कम रूप व्रत को सयम रूप के ये स  
 स्थान पर पहुँच जाती है । उपराह मार्ग  
 किया है इस लिय अपन भी ज म

बन्धन को तोड़ कर मोक्ष स्थान को प्राप्त करें। इस प्रकार वैराग्य भरी बातें राणी की सुन कर राजा को भी वैराग्य हो गया ॥४८॥

मूल—चइत्ता विउल रज्ज,

कामभोगे य दुचए ।

निर्विसया निरामिसा,

निश्चेहा निष्परिग्रहा ॥ ४९ ॥

ध्याया—त्यक्त्वा त्रिपुल राज्य, कामभोगाश्च दुस्त्यजान् ।

निर्विषयौ निरामिषौ, निःस्नेहौ निष्परिग्रहौ ॥ ४९ ॥

अन्वयार्थ—( त्रिपुलम् ) लम्बा चौड़ा ( राज्यम् )

राज्यको ( च ) और ( दुस्त्यजान् ) त्यागना शठिन ऐसे

( कामभोगान् ) कामभोगों को ( त्यक्त्वा ) छोड़कर

( निर्विषयौ ) त्रिषयवामनादि रूप ( निरामिषौ ) आमिष

करके रहित ( निःस्नेहौ ) स्नेह ( निष्परिग्रहौ ) परिग्रह

रहित ' होवे ' ४९ ॥

भावार्थ—राजा और रानी दोनों लम्बी चौड़ी सीमावाला राज्य

और दुस्त्याज्य काम भोगों को छोड़कर त्रिषयवासना, धन धान्य

रूप आमिष, स्नेह रूप प्रतिबन्ध आरम्भ परिग्रह आदि से रहित

हुए ॥ ४९ ॥

मूल—सम्म धम्म वियाणित्ता,

चेचा कामगुणे वरे ।

तव पगिज्झाहङ्गाय,

घोर घोरपरक्कमा ॥ ५० ॥

भावार्थ-हे नाथ ! गृध्र पक्षि के समान काम भागों को सत्कार  
 प्रक जानकर परित्याग कर दे । जैसे सप गुरु से भयभीत  
 दाता हुआ उसके पास स कैसा चपत हो जाता है । ऐस ही  
 अपन भी इ ह काम भागों से चपत हो कर सयम स्थान में  
 विचरे ॥ ४७ ॥

मूल--नागोन्य वधणं छित्ता, अष्पणो वसर्हि वा ।  
 एष पत्थ महाराय, उसुयारिच्छि मे सुय ॥४८॥

छाया--नाग इव वधनञ्छ्रियात्मना वमर्ति व्रतत् ।  
 एतत्पथ महाराज, इच्छुमार इति मे श्रुतम् ॥ ४८ ॥

अन्यार्थ--( इच्छुमार ) इच्छुमार नाम के ( महाराज ) हे  
 महाराज ( नाग इव ) हाथी के जैसे ( वधनम् ) वधन को  
 ( छित्वा ) तोड़ कर ( आत्मन ) आ मा के ( वमनिम् )  
 निवास स्थान को ( व्रजेत् ) जाये ( एतत् ) यह ( पथम् )  
 द्वितीयकारी ' मार्ग को ' ( इति मे ) मैं ने ( श्रुतम् ) श्रवण  
 किया था ॥ ४८ ॥

भावार्थ-हे इच्छुमार नाम से सुशोभित महाराज ! जैसे हाथी  
 अपना मजबूत वधन भी जैसे तैस ताड़ कर बध्ना अटकों को  
 चला जाता है । ऐस दा आत्मा भी जम जमा तर में फिर हुए  
 कम रूप वधन को सयम रूप कचे से तोड़ कर शुद्ध आत्मा के  
 स्थान पर पहुँच जाती ह । उपरोक्त मार्ग मैं ने सुगुरु द्वारा श्रवण  
 किया है इस लिय अपन भी ज म ज मा तर में फिर हुए कम

धन को तोड़ कर मोक्ष स्थान को प्राप्त करें। इस प्रकार वैराग्य भरी बातें राणी की सुन कर राजा को भी वैराग्य हो गया ॥४८॥

मूल—चइत्ता विउल रज्ज,

कामभोगे य दुच्चए ।

निर्विसया निरामिसा,

निन्नेहा निप्परिग्रहा ॥ ४६ ॥

छाया— त्यक्त्वा विपुल राज्यं, कामभोगाश्च दुस्त्यजान् ।

निर्विषयौ निरामिषौ, निःस्नेहौ निप्परिग्रहौ ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थ—( विपुलम् ) लम्बा चौड़ा ( राज्यम् )

राज्यको ( च ) और ( दुस्त्यजान् ) त्यागना कठिन ऐसे ( कामभोगान् ) कामभोगों को ( त्यक्त्वा ) छोड़कर ( निर्विषयौ ) विषयवासनादि रूप ( निरामिषौ ) ग्रामिष करके रहित ( निःस्नेहौ ) स्नेह ( निप्परिग्रहौ ) परिग्रह रहित ' होवे ' ४६ ॥

भावार्थ—राजा और रानी दोनों लम्बी चौड़ी सीमावाला राज्य और दुस्त्याज्य काम भोगों को छोड़कर विषयवासना, धन धान्य रूप ग्रामिष, स्नेह रूप प्रतिवध आरम्भ परिग्रह आदि से रहित हुए ॥ ४६ ॥

मूल—सम्म धम्मं विघाणिता,

वेत्ता कामगुणे वरे ।

तव पगिज्झात्तग्वाय,

घोर घोरपरक्कमा ॥ ५० ॥

भाषार्थ-हे नाथ ! गृध्र पक्षि के समान काम ३  
 पक्षी जानकर परित्याग कर दे । जैसे मय ग  
 हाता हुआ उसके पास स कैसा खपत हो जाता  
 अपन भी इह काम भागों से खपत हो कर स  
 विगुदे ॥ ४३ ॥

मूल--नागोन्व यधण छित्ता, अप्पणो वर  
 ण्य पत्थ महाराय, उस्सुयारित्ति मे सु

व्याया--नाग इव व वनञ्जिदात्मना वंमति व्रनत् ।  
 एतत्पथ्य महाराज, इच्छुमार इति मे श्रुतम् ॥

अन्वयार्थ--(इच्छुकार) इच्छुमार नाम के (महारा  
 महाराज (नाग इव) हा गी के जैमे (व्रनम्) वंम  
 (छित्वा) तोड़ कर (आत्मन) आ मा क (यमनि  
 निवास स्थान मा (व्रजेत्) व्रि (एतत्) यह (पथ्य  
 दितकारी 'मार्ग का' (इति मे) मे न (श्रुतम्) श्रु  
 क्रिया था ॥ ४८ ॥

भाषार्थ-हे इच्छुमार नाम के सुशोभित महाराज ! जैमे हाथ  
 अपना मजबूत यधन भी जैसे तैस तोड़ कर यध्या अटवी का  
 घला जाता है । ऐस हा आत्मा भी ज म जमा तर में क्रिय हुए  
 फर्म रूप व्रन को स्वयम रूप कजे स तोड़ कर शुद्ध आत्मा के  
 स्थान पर पहुँच जाती है । उपरांत मार्ग में ने सुगुरु द्वारा धवर्ण  
 क्रिया है इस लिय अपन भी ज म जमा तर में क्रिय हुए फर्म

य धन को तोड़ कर मोक्ष स्थान को प्राप्त करें। इस प्रकार वैराग्य भरी धार्ते राणी की सुन कर राजा को भी वैराग्य हो गया ॥४८॥

मूल—चइत्ता विउल रज्ज,

कामभोगे य दुचए ।

निर्विसया निरामिसा,

निन्नेहा निप्परिग्रहा ॥ ४९ ॥

श्याया— त्यक्त्वा विपुल राज्यं, कामभोगाश्च दुस्त्यजान् ।

निर्विषयौ निरामिषौ, निःस्नेहौ निष्परिग्रहौ ॥ ४९ ॥

अन्वयार्थ—( विपुलम् ) लम्बा चौड़ा ( राज्यम् )

राज्यको ( च ) और ( दुस्त्यजान् ) त्यागना कठिन ऐसे

( कामभोगान् ) कामभोगों को ( त्यक्त्वा ) छोड़कर

( निर्विषयौ ) विषयवामनादि रूप ( निरामिषौ ) आमिष

करके रहित ( निःस्नेहौ ) स्नेह ( निष्परिग्रहौ ) परिग्रह

रहित ' होवे ' ४९ ॥

भाषार्थ—राजा और रानी दोनों लम्बी चौड़ी सीमावाला राज्य

और दुस्त्याज्य काम भोगों को छोड़कर विषयवासना, धन धान्य

रूप आमिष, स्नेह रूप प्रनिबन्ध आरम्भ परिग्रह आदि से रहित

हुए ॥ ४९ ॥

मूल—सम्म धम्म वियाणिता,

चिन्वा कामगुणे वरे ।

तव पणिज्झाहक्खाय,

घोर घोरपरक्कमा ॥ ५० ॥

छाया—सम्यक् धर्मं विज्ञाय, त्यक्त्वा कामगुणान् वरान् ।  
तप प्रगृह्य यथारूपात् धार धारपराक्रमौ ॥ ४० ॥

अवयवार्थ—( सम्यक् ) शुद्ध ( धर्मम् ) धर्म को  
( विज्ञाय ) जान कर ( वरान् ) प्रधान ( कामगुणान् )  
काम भोगों का ( त्यक्त्वा ) छोड़कर ( यथारूपात् )  
निम्न प्रकार का प्ररूपित ( धारम् ) दुष्कर ( तप. ) तप  
को ( प्रगृह्य ) अङ्गीकार कर ( धारपराक्रमौ ) ' कर्मों  
का नाश करने में ' अत्यन्त पराक्रम करें ॥ ४० ॥

भावार्थ—अयात्त, अतिशयात्त, असमय तीनों दोषों पर के  
रहित शुद्ध धर्म को राजा और रानी दोनों ने पहिचान कर ह-  
स्तगत प्रधान काम भोगों का परित्याग कर दिया । और अहत्  
भगवतोंने जिस प्रकार प्रतिपादन किया है उसी प्रकार दुष्कर  
तप मन का अङ्गीकार कर रौद्र कर्मोंका नाश करने में अत्यन्त  
पराक्रम करने को प्रयत्न हुए ॥ ४० ॥

मूल—एव ते कमसो बुद्धा, सन्धे धर्मपरायणा ।

जन्ममृत्युभयोद्विग्ना, दुःखस्सतगवेपिणो ५१  
छाया—एव ते क्रमशा बुद्धा, सर्वे धर्मपरायणा ।

जन्ममृत्युभयोद्विग्ना, दुःखस्सन्तगवेपिणः ॥ ५१ ॥

अवयवार्थ—( एवम् ) इस प्रकार ( ते ) वे ( सन्धे )  
सब छत्रों ( जन्ममृत्युभयोद्विग्ना. ) जन्ममृत्यु के भय से  
चढ़े पाते हुए ( क्रमशा ) अनुक्रम से ( बुद्धाः ) तत्पन्न हुए

# भृगु चरित्र



बराब्र पाकर भृगु पुरोहित और उनकी स्त्री एवम् दोनों लटक कोशों का सम्पत्ति का उपा की त्यों छोड़ कर मुक्ति वृक्ष महण करन के लिये जा रह हैं । और भाइ हुई धन की गाड़ियोंका दम्बर रानी अपने राजा को कह रही है कि धन सम्पत्ति नश्वर है ।





( धर्मपरायणाः ) धर्म करने में तत्पर हुए ' और '  
( दुःखस्यान्तगवेपिणः ) दुःखों का अन्त करने में प्रयत्न-  
शील हुए ॥ ५१ ॥

भावाथ—इस प्रकार पुरोहित के दानों पुत्र और पुरोहित,  
पुरोहित की स्त्री, राजा और रानी ये छ अों जने अनुक्रम म जन्म  
मृत्यु के भय से भयभीत हात हुये तत्वज्ञ हाकर धर्म करने में  
तत्पर हुए । और ससार के सभी दु खों का अन्त करने में प्रयत्न  
शील हुए ॥ ५१ ॥

मूल—सासणे विगतमोहाण, पुर्व्वि भावेण भाविया ।  
अचिरेणैव कालेण, दुःखस्वस्तमुपागया ॥ ५२ ॥

राजा सह देवीण, माहणो य पुरोहित्रो ।

माहणी दारगा चैव, सव्ये ते परिनिव्युडि ५३ त्तिरेमि

छाया—शासने विगतमोहाना, पूर्वं भावितभावनानि ।

अचिरैव कालेन, दुःखस्यान्तमुपागता. ॥ ५२ ॥

राजा सह देव्या, ब्राह्मणश्च पुरोहित ।

ब्राह्मणी दारगौ चैव, सर्वे ते परिनिर्वृता' । ५३ इति ब्रवीमि

अन्वयार्थ—( पूर्व्वम् ) पहिले ( भावितभावनानि )  
शुद्ध भावना भाने वाले ' ये छ अों जने ' ( विगतमो-  
हानाम् ) निर्मोह जनों के ( शासने ) मण्डल में ( अचि-  
रेणैव ) थोड़े ही ( कालेन ) समय करके ( दुःखस्य )  
दुःख के ( अन्तम् ) अन्तको ( उपागताः ) प्राप्त हुए



( धर्मपरायणाः ) धर्म करने में तत्पर हुए ' और '  
 ( दुःखस्यान्तर्गवेपिणः ) दुःखों का अन्त करने में प्रयत्न-  
 शील हुए ॥ ५१ ॥

भावार्थ—इस प्रकार पुरोहित के दानों पृथ और पुरोहित,  
 पुरोहित की रीति, राजा और रानी ये छः अर्थों जने अनुक्रम म जन्म  
 मृत्यु के भय से भयभीत हान हुए तत्पर हाकर धर्म करने में  
 तत्पर हुए । और ससार के सभी दुःखों का अन्त करने में प्रयत्न  
 शील हुए ॥ ५१ ॥

मूल—सासणे विगतमोहानां, पुत्रिव भावेण भावित्या ।  
 अचिरेणैव कालेण, दुःखस्यान्तमुपागता ॥ ५२ ॥

राजा सह देव्या, माह्वणा य पुरोहित्यो ।

माह्वणी दारगा चैव, मन्त्रे ते परिनिवृत्तिप्रतिपत्तिमि

छाया—शामने विगतमोहाना, पूर्ण भावितभावनानि ।

अचिरैणैव कालेन, दुःखस्यान्तमुपागताः ॥ ५२ ॥

राजा सह देव्या, माह्वणथ पुरोहित ।

माह्वणी दारगा चैव, मन्त्रे ते परिनिवृत्ताः । ५३ इति त्रयीमि

अन्वयार्थ—( पूर्णम् ) पहिले ( भावित भावनानि )

शुद्ध भावना भाने काले ' ये छः अर्थों जने ' ( विगतमो-  
 हानाम् ) निर्मोह जनों के ( शामने ) मण्डल में ( अचि-  
 रेणैव ) थोड़े ही ( कालेन ) समय करके ( दुःखस्य )  
 दुःख के ( अन्तम् ) अन्तको ( उपागताः ) प्राप्त हुए

॥ ५२ ॥ ( देया ) राणी ( सप्त ) महिन ( राजा  
 नरेश ( च ) श्रार ( ब्राह्मण ) ब्राह्मण, ( पुरोहितः  
 पुरोहित ( ब्राह्मणी ) पुगदितानि ( च ) श्रार ( ढारकौ  
 दोनों पुत्र ( ते ) व ( सब ) सब ( परिनिर्वृताः ) सम्प  
 दुःखों से निवृत्त हुए ॥ ५३ ॥

भाषा—ये छ श्रौ व्यति पय जम में जो गुण भारताओं  
 आत्मा को पवित्र की थी उसी से ये पुनरपि धीतराग भग  
 के जिन शासन में दीक्षा अर्थात् सपूर्ण गृहस्थावस्था को छो  
 हुए मुखपर मुद्रपत्ति बाध कर रजोहरणादि धारण कर  
 पृथि ब्रह्मण की । याद अथर्व ही समय में मन्वार क दु खों  
 सीमा को पार कर गय ॥ ५२ ॥ कमलावती राणी इसुकार र  
 पुरोहित, पुरोहित की स्त्री श्रार दोनों पुत्र ये छ श्रौ व  
 जम जमा तर के किये हुये कर्मों का बधन तोड़ कर स  
 दुःखों से निवृत्त हुए । मोक्ष घाम में जा बिराजे पदा उ  
 अलएह अपूय सुखीका अनुभव कर रहे हैं ॥ ५३ ॥

समाप्तोऽयमध्ययनम्

शान्ति शान्ति शान्ति



\* गुरुप्रशस्ति \*

शुभे घर्षे स्त्रि-धु-त्रि-निधि-कु-मिने विक्रमरवे खयोदश्याम्  
 त् सितदले जाम किल य ॥ चतुर्थोभिख्योऽय मुनिरिह चतुर्थे  
 युते; चतुर्थस्य द्वारं विघटयतु वर्गस्य भविताम् ॥ १ ॥ गिर  
 िं बाल्ये घयसि घयनानीमपि लिपि, पठित्वेग्लिश शुचु सम  
 च पारस्यक चण ॥ अनेकाभिभाषाभिरिति हि तदा य  
 वेतोऽप्यारार्जिदेकोक्ति प्रणमत चतुर्थे मुनिममुम् ॥ २ ॥ कृतो  
 घर्षे निज-जननत योडश इतेऽरहद्वन्या कन्या सलिलनि  
 न्यामिव पराम् । दपेतायामष्टादशशरदि तुयै युग इह, जय  
 मल्ल स्मरमपि यद्यार्थायमकरोत् ॥ ३ ॥ यथा मेताव-या  
 नियमवस्थाऽधिगमिनी, मतिं गोपीच-द्रो मृदुरयसि च-द्रोप  
 ॥ तथा वोध मात्राऽध्यगमि पलमात्राद् रदसि य अतुर्थोऽय  
 । जयति मानमल्लोऽत्र भुवन ॥ ४ ॥ अथाब्दे दग्-घाण-प्रह-कु-  
 त विक्रमरवे; रय रीदग्-घाण-प्रह-कुर्घाटित स्तुर्यमुनिराद् ।  
 य सशुद्धे सुनिशद-तपस्या मुखमति स्तुर्तीयाया वीक्षा मघ  
 कृतीयाध्रमिकवत् ॥ ५ ॥ गुरु-हीरालालान् यम-नियमपालान्  
 वर अरन्ध्यान ज्ञान समलभत मान च मुनिषु । यथा मघो  
 स्थलमुमति नीर च सदृश, तथाऽसौव्याख्यान घटयति  
 न सति जडे ॥ ६ ॥ यदास्याम्ज-स्यन्न मधुरिम-प्रपन्न प्रक  
 प्रभाय व्याख्यान सुम-रस-समान रसयितुम् । समुद्रभूता  
 नर-नृ शक्ति-भूहा अभिमतान् । सुरान् सयाच-ते प्रथमनर-  
 च सृपिता ॥ ७ ॥ प्रभावि व्याख्यानान्मृतरसनिधानय दशन  
 ज्योत्स्नाभाजे विबुध-भ-समाजेरुचये । यदास्वैषाङ्गाया  
 सुख-निकाशाय नितरा, सभाचन्द्रोश्चौर चित्तिपति-चकार  
 यति ॥ ८ ॥ गतामर्यो मर्षेण च जनितहर्षेण सहित ; समा यो  
 यो विदधदसमा योगरचना स्वमुक्त्यै यस्तृप्या दधन्पि च  
 । परिजह अतुर्थे सन्मानो मुनिरयममानो विजयते ॥ ९ ॥

शीघ्रता कीजिये, शीघ्रता कीजिये, स्ट्राक में कम पुस्तकें हैं।

हिंदी साहित्य का अर्धपूर्व ग्रन्थ

## आदर्शमुनि ( सचित्र )



इस ग्रन्थ के अन्दर प्रसिद्ध वक्ता पंडित मुनि श्री १००८ श्रीचौथमलजी महाराज के किये हुये, सामाजिक, धार्मिक, सदाचार दयामयी आदि कई महत्त्व पूर्ण भाषों का दिग्दर्शन कराया गया है साथही में जैन धर्म की प्राचीनता के विषय में अनेक विदेशी विद्वानों की सम्मतियों महित व अन्य मत के ग्रन्थोंक प्रमाणों से तुलना करते हुये अन्धा प्रकाश डाला गया है पुस्तक अति उत्तम, उपयोगी एव हरएक के पढने योग्य है राजा महारानाओं व व सेठ साहुकारों के २० उम्दा आर्ट पेपर पर चित्र हैं पृष्ठ संख्या ४२० रेशमी जील्द होते हुये भी मूल्य लागत मात्र से कम रु० १।) सवा रुपया. राजसंस्करण मूल्य रु० २) शरू खर्च अलग

पत्ता - श्रीजैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति,

रतलाम ( माझवा )

